अपने देव जीवन के विकाश

और

जीवन व्रत

की सिद्धि के लिए मेरा

अद्वितीय त्याग ।

—:—:—

पहला खण्ड ।

—:०:—

लेखकः—

श्री सत्यानन्द अग्निहोत्री ।

[illegible]

[illegible]

कार्तिक १९७०——नवम्बर १९१३ ।

—:०:— 1913

प्रथम संस्करण
३०० प्रति

मूल्य एक रुपया ।

सूची ।

—:०:—

सूचना।

इस पुस्तक के पहले अध्याय में धन और सम्पत्ति विषयक त्याग का जो वर्णन किया गया है, उस में "भेंट विषयक त्याग" का उल्लेख रह गया था। इसलिए "पहले अध्याय का परिशिष्ट" हेडिंग देकर इस विषय में कुछ आवश्यक बयान इस पुस्तक के अन्त में दिया जाता है।

[देखो पृष्ट २२२-अ]

मेरा अद्वितीय लक्ष्य

और

जीवन व्रत।

—:०:—

(१)

"सत्य शिव सुन्दर हि मेरा, परम लक्ष्य होवे;
जग के उपकार में हि, जीवन यह जावे।"

[जीवन व्रत ग्रहण करने के समय
अपने परम लक्ष्य की घोषणा]

(२)

जीवन व्रत मेरा पूरण हो।
विश्व के सकल विभागों में हि,
उच्च गति प्रद परिवर्तन हो;
नीच गति दिन २ चूरन हो,
उच्च मेल सब अस्थापन हो। १
जीवन तत्व की ज्योति फैले,
जीवन $\frac{\text{रस}}{\text{बल}}$ चहुं दिग वितरन हो;

अधिकारी जन उच्च बनें सब,

विकाश की महिमा कीर्तन हो }
सत्य धरम का बोध उत्पन हो } । २

देव शास्त्र की सब शिक्षा का,

विधि सह सच्चा शुभ साधन हो;

देश २ औ' नगर २ में,

महा वाक्य का उच्चारण हो । ३

देव समाज हो उन्नत दिन २,

धर्म्म राज नित विस्तीरन हो;

जो २ अधरम वह सब क्षय हो,

देव धरम की जय २ धुन हो । ४

(मेरा जीवन व्रत सम्बन्धी पूर्ण संगीत)

अपने देव जीवन के बिकाश और
अद्धितीय जीवन ब्रत
की सिद्धि के लिए

मेरा अद्धितीय त्याग।

पहला खण्ड।

विषय प्रवेश

—:o:—

मेरा नाना प्रकार का अद्धितीय त्याग—क्यों ?

देव जीवन को प्राप्त होकर मैं विश्व के प्रत्येक विभाग के साथ अपना जीवन्त सम्बन्ध अनुभव करता हूं। मैं विश्व के नाना प्रकार के जीवित और अजीवित अस्तित्वों के साथ अपने आप को विविध उच्च भावों के द्वारा बन्धा हुआ पाता हूं। यदि मैं देखता हूं, कि किसी जीवित

अस्तित्व वा अजीवित पदार्थ को कोई अनुचित हानि पहुंच रही है, तो मैं उस अस्तित्व वा पदार्थ के साथ जुड़ा हुआ अनुभव करने के कारण उसकी इस हानि से अपने हृदय में आघात् लाभ करता हूं। यदि मेरी पत्नी, वा मेरा कोई बच्चा, वा अन्य पारिवारिक जन, वा मेरा कोई सेवक वा श्रद्धालु, वा कोई और जन किसी अन्य जन वा पशु वा पौदे वा किसी निर्जीव पदार्थ के सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करे, तो उसके देखने वा पता लगने पर मुझ तक उसकी क्रिया का आघात् पहुंचता है, और मैं उससे क्लेश पाता हूं। यदि कोई अन्य जन वा जीव मेरे उपरोक्त नाना प्रकार के सम्बन्धियों के सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करे, तो उसका भी मेरे हृदय पर आघात् लगता है। यदि मैं अपने वा किसी और के घर की दीवारों, खिड़कियों, छतों, मोरियों, उसके फ़र्श, दरवाज़ों, परनालों और शीशों आदि को मैला, टूटा, बद सूरत, मकड़ी के जालों से भरा हुआ, वा किसी रास्ते में गढ़े वा उसे धूलि से पूर्ण और गोबर वा लीद वा घास फूस आदि से मैला देखता हूं, तो मुझपर उसका क्लेशदायक असर पड़ता है। यदि मैं अपने वा किसी और के कपड़ों, बरतनों, लैम्पों, पुस्तकों, तसवीरों, सन्दूकों, जूतों वा अपनी वा किसी और की किसी मेज़ चौकी आदि . किसी अजीवित वस्तु को मैले और कदाकार रूप में देखता हूं, तो उस से मुझे क्लेश होता है। यदि मैं अपनी वा किसी की वस्तुओं

को बे ठिकाने और विशृंखला की हालत में देखता हूं, तो उससे भी मुझे कष्ट होता है।

यदि मैं देखता हूं, कि किसी जीवित पौदे को (जिसे पानी मिलना चाहिए था) पानी नहीं मिला, और उस से वह सूख रहा है, तो मुझे उसकी इस हानि को देख कर तकलीफ़ होती है। यदि मैं देखता हूं, कि मेरा एक पारिवारिक जन दूसरे पारिवारिक जन के प्रति अथवा कोई सेवक किसी अन्य सेवक के प्रति उचित सन्मान प्रदर्शन नहीं करता, वा उसके किसी दुःख दर्द की ओर ध्यान नहीं देता, अथवा उसके प्रति कोई और उचित वा न्याय-मूलक व्यवहार नहीं करता, तो उसका आघात् मुझ तक पहुंचता है, और मैं दुखी होता हूं। यदि मैं देखता हूं, कि मेरे अथवा मेरे किसी पारिवारिक वा सामाजिक जन के सम्बन्ध में कोई अपनी उचित प्रतिज्ञा भंग करता है, तो मुझे उससे कष्ट पहुंचता है। यदि मैं देखता हूं, कि मेरे वा किसी अन्य के सम्बन्ध में कोई जन कृतघ्न बनता है, तो उस से मुझे बहुत दुःख होता है। यदि मैं देखता हूं, कि कोई जन किसी अन्य जन वा पशु को कोई अनुचित दुःख वा किसी पौदे वा वृक्ष को अनुचित हानि पहुंचाता है, तो उससे मेरे दिल में सख्त चोट लगती है। यदि मैं देखता हूं, कि कोई जन मेरे वा किसी अन्य के सम्बन्ध में अपना कोई आवश्यक

कर्तव्य कर्म्म ठीक समय में और भली भांत पूरा नहीं करता, तो मुझे उस से बहुत क्लेश मिलता है। यदि मैं देखता हूं, कि कोई जन मेरे वा किसी अन्य जन के प्रति कोई अत्याचार करता है, तो मुझे उस से बहुत दुःख होता है। यदि मैं देखता हूं, कि मेरा कोई सम्बन्धी योग्यता रखने पर भी एक वा दूसरे कारण से अपने जीवन को उन्नत नहीं करता वा नहीं करना चाहता, तब मुझे उससे क्लेश पहुंचता है। यदि मैं देखता हूं, कि कोई जन अपने आत्मिक जीवन वा किसी और के विषय में किसी प्रकार का मिथ्या विश्वास रखता है, वा किसी मिथ्या मत वा विश्वास का प्रचार करता है, वा मिथ्या का साथी बन कर किसी सम्बन्ध में कपटाचारी वा हानिकारक बनता है, तो उस से मुझे बहुत आघात् पहुंचता है। यदि मैं देखता हूं, कि किसी के सम्बन्ध में कोई द्वेष भाव रखकर उसे कोई अनुचित हानि पहुंचाने की चेष्टा करता है, तो उससे मैं व्यथित होता हूं। यदि मैं देखता हूं, कि कोई अपने धन का अपव्यय वा किसी वस्तु का अनुचित व्यवहार करता है, तो उससे मुझे तकलीफ़ पहुंचती है। यदि मैं देखता हूं, कि असंयम द्वारा कोई जन अपने शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचा रहा है, तो मुझे उसकी ऐसी क्रिया क्लेश दायक मालूम होती है। इत्यादि, इत्यादि।

इस प्रकार के नाना आघात् मुझे अपने किसी आश्रित वा अधीन अस्तित्व की रक्षा और सहाय करने और हानिकारक जन पर उसकी बुरी क्रिया के प्रगट करने वा यथा सम्भव उस तक अपनी उच्च ज्योति के पहुंचाने, और उसमें किसी आवश्यक उच्च बोध के उत्पन्न करने के लिए सदा प्रेरणा करते हैं। जिन आत्माओं में इस प्रकार के नाना उच्च बोध वर्तमान नहीं हैं, उन्हें उपरोक्त प्रकार के न कोई आघात् पहुंचते हैं, और न वह ऐसे किसी आघात् से परिचालित होकर इन विषयों में किसी की कोई रक्षा वा सहाय करते हैं, और न किसी का ऐसी अवस्था से उद्धार करने के लिए कोई यत्न करते हैं, और न ऐसा संग्राम करके विश्व में कोई उच्च परिवर्तन उत्पन्न करते हैं।

इसी प्रकार के विश्व के विविध विभागों में नाना प्रकार के हित लाने के निमित्त, मैं अधिकारी आत्माओं में उच्च वा सात्विक भावों के जाग्रत वा उन्नत करने के लिए जो २ कुछ संग्राम करता हूं, उसका भी उन बोधों से विहीन करोड़ों जनों में कोई निशान नहीं मिलता। इस लिए विश्व में इस प्रकार के सर्वोच्च परिवर्तन के लाने में जैसे मेरे आविर्भाव की विशेषता है, वैसे हि मेरे लिए अपने इस विशेष अविर्भाव के विशेष लक्ष्य वा व्रत के पूरा करने के निमित्त अपने विविध सम्बन्धियों से उनकी

नाना प्रकार की नीच गतियों के कारण, नाना प्रकार के आघात् और ऐसे बड़े २ आघातों से घोर से घोर क्लेश और बड़े २ दारुण दुःख पाना और सहना और नाना प्रकार के त्याग स्वीकार करना और उन के उद्धार और भले के लिए अपने शारीरिक, मान्सिक और हार्दिक बल को खर्च करना और सब प्रकार का आत्म-समर्पण करना भी लाज़मी रहा है।

प्यास के लगने से मनुष्य पानी पीता है, और पानी का पीना उसके शरीर के रक्त को पतला और प्रवाहित रखने के लिए निहायत ज़रूरी है। अब यदि राम को बहुत प्यास लगी हो, परन्तु उसे पानी न मिले, अथवा समय पर उसके मिलने की सम्भावना न हो, तो राम के लिए यह प्यास क्लेशदायक होजायगी। और यह प्यास उसमें जितनी अधिक प्रबल होगी, उतनी हि उस के लिए अधिक क्लेशदायक बनकर उसे व्याकुल और बेचैन करेगी। फलतः, जिस मनुष्य में जो भाव जिस २ प्रकार की तृप्ति ढूंढ़ता हो, वह यदि उसे लाभ न हो, तो वह उसके लिए अवश्य बेचैन और व्याकुल होता है।

मुझ में विश्व के प्रत्येक जगत् के संबंध में वह सब उच्च भाव विकशित हुए हैं, कि जो उनमें उच्चगति-मूलक एकता चाहते हैं। इसीलिए जिस किसी संबंध

में जिस किसी कारण से कोई बुराई उत्पन्न होती है, अथवा कोई सम्भव और वांछनीय भलाई नहीं आती, उसी से मुझे आघात् पहुंचता है, और यदि यह आघात् बहुत प्रबल हो, तो मैं उससे बेचैन होकर तड़पने लगता हूं। परन्तु जिन में ऐसे बोध विकशित नहीं हुए, वह ऐसी किसी घटना से दुखी वा बेचैन नहीं होते। उनमें जिस २ संबंध में पाप वा बुराई का बोध नहीं है, उसके लिए उन्हें कोई आघात् नहीं लगता, और कोई क्लेश वा दुःख नहीं पहुंचता। इसीलिए कितने हि लोग क्या मेरे संबंध में और क्या विश्व के अन्य अस्तित्वों के संबंध में नाना प्रकार के पाप और नाना प्रकार की बुराइयां वा नीच गतियां ग्रहण करके केवल यही नहीं, कि कुछ दुखी नहीं होते, किन्तु बहुत शान्त और प्रसन्न रहते हैं। पत्थर को जैसे जोंक नहीं लगती, वैसे हि इन अबोधी जनों को किसी के संबंध में अपने किसी अनुचित आचरण के लिए कोई दुःख वा क्लेश नहीं होता, और न कोई घृणा अनुभव होती है। इसीलिए उनके ऐसे नाना पापों और अपराधों का क्रम बराबर जारी रहता है, और कोई कल्पित ईश्वर वा देवता वा उनका कोई मंत्र दाता गुरु उन्हें उनसे मोक्ष नहीं देसकता।

जैसे भूख और प्यास का लगना शरीर की रक्षा के लिए आवश्यक है, और जिस जन को भूख वा प्यास न

लगती हो, और आहार वा पानी के समय पर न मिलने, अथवा बिलकुल न मिलने से उसे कोई बेचैनी न मालूम होती हो, उसके शरीर का नाश होजाना अवश्यम्भावी है, वैसे हि एक ओर जिस आत्मा में अपने विश्वगत किसी संबंधी के संबंध में अपनी किसी नीच गति के लिए कोई क्लेश न होता हो, और उसके संबंध में किसी अशुभ वा अहित को उत्पन्न करके उसे कोई चोट न लगती हो, और दूसरी ओर उसे जीवन तत्व विषयक कोई ज्ञान और उसमें उच्च जीवन की प्राप्ति के लिए कोई आकांक्षा न हो, उसका नेचर के इसी अटल नियम के अनुसार कुछ काल में विनाश होजाना अवश्यम्भावी है।

हित, अहित, सत्य और असत्य विषयक नाना बोधों को पाकर, और विश्व के प्रत्येक जगत् के साथ सत्य और शुभ मूलक मेल से अपने आत्मा के सर्व्वाङ्ग जीवन का विकाशार्थी बनकर, मेरे लिए अपने इस दुनिया के अबोधी संबंधियों से जैसे विविध प्रकार के आघात् और क्लेश पाना आवश्यक रहा है, वैसे हि नाना दारुण आघातों और दुखों के समय तड़पना और बेचैन होना भी लाज़मी हुआ है। परन्तु इस महा तत्व से अबोधी जन, कितनी हि अवस्थाओं में मुझे अपनी किसी नीच गति के कारण कोई आघात् पहुंचाकर वा दुःख देकर वा किसी ऐसे आघात् वा दुःख से बेचैन वा तड़पता देख

कर केवल यही नहीं, कि इस में मुझ उच्च बोधों के भण्डार की कोई महिमा नहीं देखते रहे, और अपने एक वा दूसरे अपराध वा पाप के लिए कोई शोक वा क्लेश वा घृणा अनुभव नहीं करते रहे; वरन उलटा मेरे सम्बन्ध में एक वा दूसरा दोषारोपण वा एक वा दूसरी दुश्चिन्ता करके अपने हृदय को और भी अधिक कुलषित, नीच, कठोर और विकार युक्त बना लेते रहे हैं !!

हरबर्ट स्पेन्सर अपनी "एड्यूकेशन" नामी पुस्तक में एक जगह इस प्रकार लिखते हैं :—

"If by any system of culture an ideal human being could be produced, is it not doubtful whether he would be fit for the world as it now is? May we not, on the contrary, suspect that his too keen sense of *rectitude* and too elevated standard of conduct, would make life intolerable or even impossible?"

भावार्थ ।

"यदि शिक्षा की किसी विधि के द्वारा एक आदर्श मनुष्य उत्पन्न किया जा सके, तो क्या यह सन्देह नहीं हो सकता, कि इस काल में दुनिया जैसी है, उसके साथ वह किसी प्रकार मेल की अवस्था में न रह सकेगा? इसके विरुद्ध क्या हम यह शंका नहीं कर सकते, कि उस में ठीकपन का जो अति गहरा भाव और

चरित्र विषयक अति उच्च पैमाना वर्तमान होगा, उससे इस जगत् में उसका जीवन उसके लिए अत्यन्त दुखदाई अथवा असम्भव हो जाएगा ?"

हरबर्ट स्पेन्सर विख्यात् विकाश वादी थे। "शिक्षा" नामक पुस्तक में उन्हों ने मनुष्य के लिए उच्च शिक्षा विषयक विधि का वर्णन करते २ अचानक अपने भीतर यह प्रश्न उठता हुआ देखा, कि यदि कोई मनुष्य साधारण मनुष्यों की तुलना में इतनी उच्च शक्तियों की सामग्री लेकर पैदा हो, कि जिस से वह शिक्षा की उच्च विधि में से गुज़र कर एक आदर्श जीवन धारी मनुष्य बन जाए, तो क्या दुनिया के साधारण मनुष्यों की जैसी वर्तमान अवस्था है, उन में रहकर वह उनके साथ किसी प्रकार मेल रख सकेगा ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्हों ने लिखा है, कि उन्हें सन्देह है, कि इस दुनिया में ऐसे आदर्श मनुष्य का जीवन उसके लिए अतिशय दुखदाई अथवा असम्भव हो जाएगा।

स्पेन्सर को उपरोक्त प्रश्न का उपरोक्त उत्तर देते समय क्या पता था, कि उन्हीं के समय में एक ऐसा आदर्श पुरुष नेचर ने प्रगट किया है, कि जिसके जीवन के सम्बन्ध में यह बात "सन्देह" के साथ नहीं, किन्तु निश्चय रूप में कही जा सकती है। वह अपने

इस आदर्श जीवन के कारण जिस प्रकार के महा भयानक दुखों और उत्पीड़नों में से गुज़रा है, वह अकथनीय है। उसे एक ओर जहां अपने अद्वितीय व्रत के विचार से लोगों से जो २ सर्व्वोच्च सन्मान और आकर्षण पाना चाहिए था, वह प्राप्त नहीं हुआ; वहां दूसरी ओर उसके विरुद्ध वह उनके निकट अतिशय घृणा और उत्पीड़न का पात्र समझा गया। इस स्वभाव-गत महा भेद के कारण लोग उसकी ओर आकृष्ट होने के स्थान में उससे परे भागने और परे रहने में आराम अनुभव करते रहे हैं। जैसे कबूतर और कव्वे दोनों हि पक्षी जाति में से होकर भी मिलकर नहीं रहते, किन्तु सर्वदा दूर २ रहते हैं, वैसे हि नीच गति परायण जन आत्मा होकर इस सर्व्वोच्च जीवन धारी देवात्मा से मेल नहीं कर सकते, और उस से परे २ रहते हैं। इसीलिए उसे आज तक इस पृथिवी में एक भी ऐसा सम्बन्धी नहीं मिला, कि जिस के साथ वह सब प्रकार से मेल की अवस्था में रहा हो। परन्तु उसने विश्व के एक श्रेष्ठ विभाग का सर्व्वोच्च आविर्भाव और अंग होकर उसके प्रत्येक विभाग में जो कुछ और जहां तक उच्च विकाश हो सकता है, उसके लाने, और जहां तक उसकी अहित से रक्षा हो सकती है, उसकी रक्षा करने के लिए जो अद्वितीय व्रत ग्रहण किया था, उसकी सिद्धि

के लिए उन सब अद्वितीय दुखों को सहा है, उन सब महा त्यागों, तपों और संग्रामों को ग्रहण किया है, कि जिनके बिना वह अपने अद्वितीय व्रत को कदापि पूरा नहीं कर सकता था।

जिस विश्व ने अपने उच्च विकाश के क्रम में मुझे इस अद्वितीय देवयज्ञ के पूर्ण करने के निमित्त आविर्भूत किया, जिस ने मेरे आत्मा की गठन को पूर्ण करके मुझे वह देव शक्तियां दीं, कि जो इस देवयज्ञ के लिए आवश्यक थीं, उसकी यह विचित्र लीला क्या किसी को दिखाई देती है ? क्या मेरे इस सर्व्वोच्च आविर्भाव में विकाश विषयक नियम अपने जिस महान सौन्दर्य्य को प्रकाश कर रहा है, उसकी अतिशय मनोहर छवि किसी के चित्त को आकृष्ट करती है ? क्या इस अद्वितीय यज्ञ के साधन में मेरा पूर्ण आत्म-समर्पण और मेरा घोर संग्राम और तप वा पूर्ण त्याग किसी की दृष्टि में कुछ मूल्यवान मालूम होता है ? क्या मेरे इस अद्वितीय आविर्भाव और अद्वितीय व्रत के ग्रहण करने से जो २ अति श्रेष्ट और अनोखे फल उत्पन्न हुए हैं, अर्थात् सैंकड़ों नर और नारी जनों के आत्माओं में जो २ शुभ परिवर्तन और उनके परिवारों में जो २ हित आया है, उनके और उनकी सन्तान के लिए जिस २ प्रकार की कल्याणकारी इन्सटीट्यूशन खुली हैं, जिस २ प्रकार की अति श्रेष्ट

और अद्भुत पुस्तकें रची गई हैं, जो २ उच्च लेख लिखे गए हैं, सत्य धर्म्म विषयक जो २ नाना प्रकार के विचित्र सत्य प्रकाशित हुए हैं, आत्मिक जीवन के विकाश वा विनाश के सम्बन्ध में जो २ महान तत्व प्रगट हुए हैं, धर्म्म विषयक जो २ अज्ञान और कुसंस्कार नष्ट हुआ है, कल्पनामूलक मिथ्या मतों और विज्ञानमूलक सत्य मत का जो २ भेद खुला है, जो २ पाप गया है, और जो २ सत्य और शुभ आया है—वह सब मेरे अद्वितीय त्याग की महिमा को डंके की चोट से स्थापन नहीं करता? अवश्य करता है। तब मेरे इस परम हितकर यज्ञ और अद्वितीय व्रत की महिमा और उसके सौन्दर्य्य के देखने के योग्य होना, और उसके कार्य्य में भागी बन्ने के परम सौभाग्य को अनुभव करना, और इस अद्वितीय यज्ञ के अग्निकुण्ड में अपने धन वा शारीरिक वा मान्सिक वा यथा सम्भव हार्दिक बल की आहु-तियां देने के योग्य बनना किसी मनुष्य का कितना श्रेष्ठ अधिकार!! ऐसे श्रेष्ठ अधिकार के लाभ करने के निमित्त जितने आत्माओं में अधिक से अधिक आकांक्षा जागेगी, और वह उसके लिए खुशी २ अपने आप को समर्पण करेंगे, उतना हि मेरे आविर्भाव का उद्देश सिद्ध होगा, और इस देश और पृथिवी का वह कल्याण साधन होगा, जो मेरे जीवन व्रत ग्रहण करने से पहले कभी नहीं हुआ था।

मेरा अस्तित्व और मेरा जीवन व्रत, मेरा त्याग और मेरा संग्राम, विश्व के जिस विकाशकारी अटल नियम के द्वारा प्रगट हुआ है, वह जैसे उसकी गठन के प्रत्येक विभाग में (विशेषतः मनुष्य जाति में) उच्च परिवर्तन लाने के लिए ज़रूरी था, वैसे ही वह उसके अटल नियम के अनुसार (अन्धकारग्रस्त और नीचगतिपरायण हज़ारों आत्माओं के विरोधी बनने पर भी) अब तक जिस २ विधि से फलीभूत हुआ है, वह सब उच्च बोध रखने वालों के लिए अति आश्चर्य्य और अलौकिक लीला है। आगे भी इसी अटल और महान नियम के द्वारा वह जो इस से भी बढ़ चढ़ कर फलीभूत होगा, उस में कोई सन्देह नहीं हो सकता।

मेरा सब प्रकार का अद्वितीय त्याग जिन कई बड़े २ विभागों में विभक्त हो सकता है, उनमें से निम्न लिखित केवल चार प्रकार के त्यागों का इस पुस्तक के पहले खंड में वर्णन होगा, शेष का दूसरे खंड में वर्णन करने की आशा करता हूं :—

(१) धन और सम्पत्ति का त्याग, (२) वंशीय जनों अर्थात् पुरानी बिरादरी का त्याग, (३) स्वास्थ्य का त्याग, (४) ब्राह्म समाज का त्याग।

सोलन, पर्व्वताश्रम
अप्रैल १९१३।

सत्यानन्द अग्निहोत्री।

पहला अध्याय।

—:०:※:०:—

धन और सम्पत्ति का त्याग।

(१)

देव जीवन सम्बन्धी नाना अनुराग शक्तियों के क्रमशः विकशित होने से जिस प्रकार पूर्णांग धर्म्म जीवन हि मेरा मुख्य लक्ष्य बन गया, उसी प्रकार इस उच्च जीवन के पथ में जब मुझे कोई पारिवारिक वा अन्य सम्बन्धी, व्यवसाय, धन, मान, इज़्ज़त, सुख वा आराम आदि प्रतिबन्धक मालूम हुआ, तभी उसका त्याग करना, वा उसका साथ न देना भी मेरे लिए आवश्यक होगया। धर्म्म जीवन विषयक महा अनुरागों को प्राप्त होकर मेरे लिए उपरोक्त सब प्रकार का त्याग करना और शत २ जनों से नाना प्रकार के उत्पीड़नों, असह्य दुखों और कष्टों का पाना और सहना लाज़मी होगया। इसीलिए अपने अद्वितीय जीवन व्रत को ग्रहण करके मैंने जितना और जिस २ प्रकार का और जितने काल तक विविध प्रकार का भयानक दुःख पाया और सहा है, और नाना प्रकार की

हानियां उठाई हैं, उनकी किसी और से तुलना नहीं हो सकती।

जीवन व्रत ग्रहण करने, के बहुत समय पहले से हि मुझ में धर्म्म विषयक अनुराग और उसकी प्राप्ति में जब और जो कुछ प्रतिबन्धक मालूम हो, उसके त्याग का भाव विकशित होगया था। मुझे अपने अठारवें साल की वयस में हि अपने भावी गुरदेव की उच्च संगत प्राप्त होगई थी। इस उच्च संगत के उच्च आकर्षण को हम दोनों हि एक दूसरे के प्रति अनुभव करते थे। इन्हीं दिनों रुड़की कालेज से पास होने पर, मैं सब से पहले आगरे की नहर पर सरकारी मुलाज़िम नियत हुआ। मुझे इस नौकरी में प्रति मास पचास रुपए तनख़्वाह और उसके भिन्न पन्द्रह रुपए घोड़े के खर्च के लिए और कुल मिला कर पैंसठ रुपए मिलते थे। परन्तु अपने भावी गुरु महाराज की उच्च संगत से दूर होजाने से मेरा दिल वहां नहीं टिकता था। उन से दूर रह कर मेरा हृदय उदास रहता था—एक २ वार उनकी जुदाई मुझे इतना व्याकुल और बेचैन कर देती थी, कि मेरा दिल फूट पड़ता था, और मैं बहुत चिल्ला २ कर रोने लगता था। मैं ऐसी अवस्था में स्वभावतः यह कामना करता था, कि कोई ऐसी घटना पैदा हो, कि जिससे मैं फिर उनके चरणों में पहुंचूं। मेरी इन शुभ कामनाओं से आख़िरकार नेचर में एक रास्ता पैदा होगया। रुड़की

कालेज में असिस्टेन्ट सर्वेंग मास्टर की जगह ख़ाली हुई। मुझे उसकी ख़बर मिली । मैंने उसके लिए प्रिन्सपिल साहब से प्रार्थना की। उन्हों ने मेरी प्रार्थना मन्ज़ूर कर ली। इस ओहदे की तनख़्वाह यद्यपि केवल चालीस रुपए माहवार थी, और मुझे नहर की नौकरी में पैंसठ रुपए मिलते थे, तथापि मैंने बड़ी ख़ुशी के साथ अपनी पहली नौकरी को छोड़ दिया, और कई विघ्नों को अति-क्रम करके आख़िरकार मैं रुड़की में (जहां कि मेरे भावी गुरु महाराज उन दिनों सरकारी नौकरी करते थे) जा पहुंचा। यह जून १८६९ ई० की बात है। उनकी उच्च संगत में रहकर मुझे वह तृप्ति मिली, कि जिसके लिए मेरा हृदय व्याकुल रहता था।

(२)

सन् १८७१ ई० में मैंने एक और इम्तहान पास किया, और उसके कारण मुझे रेल के महकमे में एक बड़ी नौकरी पर भेजा गया। इस नौकरी में मुझे साठ रुपए महीने के भिन्न डेढ़ रुपया रोज़ सफ़र ख़र्च के लिए मिलता था, और इस तौर पर महीने में सौ रुपए से भी अधिक मेरी आमदनी थी। परन्तु यहां पहुंच कर मेरा फिर वही हाल हुआ। मैं अपने गुरु महाराज की जुदाई से फिर बेचैन रहने लगा। मैं पहले की न्याईं फिर ऐसी शुभ कामनाएं करने लगा, कि किसी तरह मुझे फिर उन

के चरणों में पहुंचने और रहने का अवसर प्राप्त हो। मेरी इन शुभ कामनाओं ने फिर मेरे लिए मार्ग तैयार किया। रुड़की कालेज में इस बार हेड सर्वेंग मास्टर की जगह ख़ाली हुई। इस ओहदे का वेतन केवल साठ रुपए था। मैंने फिर उसके लिए आवेदन पत्र भेजा। मेरी दरख्वास्त मन्ज़ूर हुई, और मैं फिर रेलवे से तबदील होकर कालेज में आया। मैंने प्रायः एक सौ पांच रुपए माहवार की जगह छोड़ कर साठ रुपए की जगह ग्रहण करके फिर शान्ति लाभ की। परन्तु हाय ! इस बार जब मैं रुड़की में पहुंचा, तब मैंने अपने धर्म्म गुरु को बहुत बीमार देखा। ऐसी अवस्था में मैं अपनी नौकरी के घंटों के सिवाय उन्हीं के पास रहा करता था। उन्हीं की शुश्रूषा किया करता था। परन्तु अत्यन्त शोक कि उनका रोग बढ़ता गया, यहां तक कि थोड़े दिनों में उनका देहान्त होगया। ओह ! मेरे लिए कितनी निराशा !! उन्हों ने अपनी इस बीमारी की हालत में मुझ से मिलते हि यह कहा था, " कि तुम पर तो सिर मुंडाते हि ओले पड़े "। यह बचन उनका बिलकुल सच निकला। अब वही रुड़की जहां पहुंचने के लिए मैंने धन का दो बार त्याग स्वीकार किया था, मेरे लिए बिलकुल सूनी होगई। मेरा जी वहां से उखड़ गया। और फिर प्रायः डेढ़ साल की नौकरी के बाद मैं लाहौर मैं आगया। उच्च

संगत के लिए मैंने धन का जो २ कुछ त्याग किया वह मेरे लिए बहुत सहज और स्वाभाविक त्याग था।

(३०)

जब मैं एक वार नहर पर और दूसरी वार रेलवे के काम पर नौकर था, तब वहां की नौकरियों के त्याग के भिन्न वहां पर रुपए के संबंध में दो और घटनाएं भी ऐसी हुई, कि जो उल्लेख करने के योग्य हैं। नहर के काम को छोड़कर जब मैं रुड़की को जाने लगा, तब मैंने एक ऐसे जन की दरख़्वास्त पर कि जो रुड़की कालेज में मेरे साथ पढ़ा करता था और जो उसी नहर पर नौकर था, अपना बहुत सा असबाब उसे पीछे से बेच देने के लिए देदिया। उसने इक़रार किया, कि वह मेरे सारे असबाब को बेचकर उसका रुपया रुड़की में मेरे पास भेज देगा। परन्तु उसने ऐसा न किया; अर्थात् मेरा कुल असबाब या तो उसने ख़ुद ही दबा लिया, या उसे बेच कर उसके दाम अपने पास रख लिए। मैंने उसे इस विषय में एक दो पत्र लिखे, परन्तु कोई फल न निकला। मैंने यह जानकर कि अब यह मेरा रुपया देना नहीं चाहता, उससे किसी और विधि से रुपया वसूल करना और अपने सहपाठी को दिक्क़त में डालना उचित न समझा, और इसलिए मैंने वह सब रुपया उसी के पास छोड़ दिया।

(४)

दूसरी बार रेल की नौकरी से अलग होकर जब मैं रुड़की कालेज में गया, तब भी मैंने अपनी सवारी का एक ऊंट, उसका एक खूबसूरत पाखड़ा और अपनी एक अच्छी छोलदारी एक जन को उधार बेच दी। उसने वादा किया, कि वह थोड़े दिनों में उनके दाम मेरे पास रुड़की में भेज देगा। परन्तु उसने ऐसा न किया। वह मेरा सब रुपया हज़म कर गया। मुझे अदालत के द्वारा किसी से भी अपना कुछ रुपया वसूल करना कभी पसंद न था। इसीलिए पहले रुपए की तरह मैंने इस रुपए को भी छोड़ दिया।

(५)

लाहौर में आकर प्रायः डेढ़ वर्ष के बाद अर्थात् १८७५ ई० से (जब कि मेरी उमर का पच्चीसवां साल जारहा था) मैंने परोपकार के भाव से परिचालित होकर दो मासिक पत्र जारी किए, जिनमें से एक हिन्दी में और दूसरा उर्दू में था। हिन्दी पत्र के पढ़ने वाले इतने थोड़े थे, कि मैंने उसका जारी रखना वृथा समझा और उन्नीस महीने के बाद उसे बन्द कर दिया। परन्तु उर्दू पत्र को मैंने सात वर्ष तक प्रकाशित किया। यद्यपि इस पत्र का खर्च भी इसके ग्राहकों की आय से पूरा न होता था, तथापि मैंने सैकड़ों रुपए अपने पास से खर्च करके उसे जारी रक्खा। फिर जब पूरे सात साल के बाद वह बन्द

किया गया, तब उसके खरीदारों में से जिन कसरत से लोगों के ज़िम्मे जिस २ क़दर मेरा रुपया बाक़ी था, उस की फ़ह्‌रिस्त मैंने आख़री परचे में छापकर यह लिख दिया, कि उनमें से जो जन मेरे रुपए का अदा करना अपना फ़र्ज़ समझते हों, वह मेरे पास भेजदें, अन्यथा मैं आप उनसे इस रुपए के वसूल करने की कोशिश न करूंगा। मुझे जहां तक याद पड़ता है, उन लोगों में से शायद किसी ने कुछ रुपया नहीं दिया। मैंने भी उसके बाद कभी किसी से उसका तक़ाज़ा नहीं किया।

ईश्वर कल्पित अस्तित्व के सम्बन्ध में विश्वास के चले जाने पर मैंने अपने सत्य और शुभ अनुराग के अनुसार अपनी उन सारी पुस्तकों का बेचना बन्द कर दिया, कि जो ईश्वर के अस्तित्व की साक्षात् वा असाक्षात् रूप से पोषकता करती थीं। सन् १८६६ ई० में मैंने उनकी जो फ़ह्‌रिस्त तैयार कराई, उसके अनुसार उनकी तादाद बारह हज़ार एक सौ इक्यावन और क़ीमत सात सौ रुपए से भी ऊपर थी। मैंने इन सब पुस्तकों को जला देने के लिए आज्ञा दी, और वह तीन दिन तक देवाश्रम में जलती रहीं। सत्य और शुभ के साथ मेल रखने के निमित्त मेरे लिए यह त्याग करना आवश्यक होगया था।

(६)

मैं अपने माता पिता को अपने लिए पूजनीय जान

कर उनके प्रति श्रद्धा और उनका उचित रूप से सम्मान करता था। विदेश से घर जाने पर मैं विनीत भाव से झुक कर और उनके चरणों को स्पर्श करके उन्हें प्रणाम करता था। मैं उन की सब प्रकार से उचित प्रसन्नता लाभ करने और उन्हें सन्तुष्ट रखने के निमित्त उनकी विविध प्रकार से सेवा और शुश्रूषा करना अपना कर्तव्य अनुभव करता था। अपनी सरकारी नौकरी के आरम्भ अर्थात् अकतूबर सन् १८६८ ई० से लेकर सन् १८७३ ई० के अख़ीर तक—पांच वर्ष से कुछ अधिक काल में—मैं अपने आवश्यक व्यय के अनन्तर जो कुछ धन बचा सकता था, वह सब का सब अपने घर भेज देता था।

जब मेरे पिता का देहान्त होगया, तब मैंने अपनी विधवा माता को सब प्रकार से सन्तुष्ट रखने और उनकी पूर्ण प्रसन्नता लाभ करने के निमित्त यह स्थिर किया, कि जो कुछ पैतृक धन सम्पत्ति मेरे पिता छोड़ गए हैं, उसकी वही एक मात्र मालिक हों। हिन्दू क़ानून के अनुसार बेटों के वर्तमान होने पर कोई विधवा स्त्री अपने पति के धन वा सम्पत्ति की मालिक नहीं बन सकती। मेरा छोटा भाई मेरे पिता जी के देहान्त के समय अवश्य नाबालिग़ था, परन्तु मैं नाबालिग़ न था, और इस क़ानून के अनुसार यद्यपि मैं पैतृक सम्पत्ति का मालिक हो सकता था, तो भी मैंने अपनी माता की प्रसन्नता और तसल्ली के लिए आप मालिक होना न चाहा; किन्तु

एक मात्र अपनी माता को हि सब जायदाद का मालिक बना देना पसन्द किया। इस लिए मेरी इच्छा के अनुसार वही सब पैतृक सम्पत्ति की मालिक बनीं। और मेरे पिता की जिन दो गाओं में ज़मीदारी थी, उनके सम्बन्ध में मेरी माता के साथ २ हम दो भाइयों का नाम भी सरकारी रजिस्टर में दर्ज किया गया। इस प्रबन्ध से मेरी माता ने बहुत बड़ी तसल्ली और मुझ से बहुत बड़ी प्रसन्नता लाभ की।

मैंने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की, कि मेरे पिता स्थावर सम्पत्ति के भिन्न और क्या कुछ धन वा माल छोड़ गए हैं। मैं जब से नौकर होकर आप कमाने के योग्य बन चुका था, तभी से मेरे भीतर यह भाव काम करता था, कि मैं अपने पैतृक धन सम्पत्ति से कभी कुछ सहाय न लूं, और जहां तक सम्भव हो, मैं अपनी ओर से अपने माता पिता की सहाय और सेवा करूं। पिता अभी जीते थे, और उन्हों ने मुझे घर का एक दुशाला ओढ़ने के लिए देना चाहा, और कहा, कि यह दुशाला हमारे कुछ काम नहीं आता; तुम ओढ़ा करो। मैंने उसके लेने से सन्मान पूर्व्वक इन्कार किया। उन्हों ने बहुत कुछ ज़ोर दिया, परन्तु मैंने उसे ग्रहण न किया।

पिता के शरीर त्याग करने पर भी केवल यही नहीं, कि मैंने पैतृक सम्पत्ति में से एक कौड़ी नहीं ली, किन्तु अपनी ओर से समय २ में धन के द्वारा भी मैं अपनी माता

की सेवा करता रहा। पिता के देह पात के अनन्तर मुझे मालूम नहीं, कि वह अपने पीछे क्या कुछ नक़द, ज़ेवर और अन्य असबाब छोड़ गए थे। परन्तु यह मुझे अवश्य पता है, कि हमारे कई एक मकान और कई एक बाग़ थे, हमारा एक तालाब था, हमारे कुछ पशु थे और इन सब के भिन्न एक गांव में एक चौथाई और दूसरे में आठवें हिस्से की ज़मींदारी थी। इस कुल पैतृक सम्पत्ति की जैसा कि मैंने बयान किया है मेरी मां हि मालिक रहीं, और मेरा छोटा भाई उसका प्रबन्ध करता रहा।

सन् १८८२ ई० के अन्त में मैंने सरकारी नौकरी छोड़ दी, और अपना जीवन सम्बन्धी महाव्रत ग्रहण किया। जीवनव्रत के ग्रहण करने के अनन्तर अकतूबर सन् १८८४ ई० में जब मैं घर गया, तब मेरे भाइ ने मुझ से कहा, कि आप तो विदेश में रहते हैं; और सरकारी कागज़ों में ज़मींदारी की मालकियत में मेरे साथ आपका नाम भी दर्ज है, इसलिए आपकी अवर्तमानता में कई बार सरकारी अफ़सरों के साथ एक वा दूसरे काम में बहुत दिक्क़त पड़ती है। इस पर मैंने तहसील में जाकर उसके नाम एक आम मुख़तारनामा तसदीक़ करा दिया, और सारी जायदाद उसके हाथ में सौंप दी, तब से मैंने इस पैतृक सम्पत्ति में से कभी एक कौड़ी नहीं ली।

सन् १८८५ में मेरी मां के परलोक वासी होजाने पर मेरा छोटा भाई हि कुल पैतृक धन सम्पत्ति का मा-

लिक बना। मैंने क्या इस जायदाद से और क्या अपने छोटे भाई से कभी एक पैसे की कोई सहाय ग्रहण नहीं की, वरञ्च उसके अनन्तर कभी २ धन से भी अपने भाई की कुछ सहाय अवश्य की।

(७)

रुड़की कालेज से पास होने के बाद मैं पहले पहल अकतूबर सन् १८६८ में सरकारी नौकर बना। मैं प्रायः डेढ़ वर्ष तक नहर और रेल के काम में और प्रायः चार साल रुड़की कालेज में मास्टर रहा। उसके बाद प्रायः नौ साल लाहौर के सरकारी हाई स्कूल में ड्राइंग और सर्वेंग मास्टर रहा। मैं जिन महान और अद्वितीय देव शक्तियों को बीज रूप में लेकर आविर्भूत हुआ था, वह अनुकूल वेष्ठनी को प्राप्त होकर धीरे २ प्रस्फुटित और उन्नत होती जारही थीं। लाहौर में मेरी इन उच्च शक्तियों ने बहुत विकाश लाभ किया। इसी स्थान में सन् १८८२ ई० में जब कि मेरी उमर का बत्तीसवां साल जा रहा था, मेरे हृदय ने अपने चारों ओर करोड़ों स्त्री पुरुषों को जीवन के उच्च लक्ष्य से अन्ध और अज्ञानी और नाना प्रकार की नीच गतियों वा दुराचारों में लिप्त देखकर प्रबल रूप से यह प्रेरणा करनी आरम्भ की, कि तुम अब तक उनके आत्मिक उद्धार और कल्याण के लिए जो कुछ करते हो, वह काफ़ी नहीं–तुम जिस उच्च लक्ष्य के अनुरागी हो, उसके लिए तुम्हें अपने आप को पूर्णतः भेंट धरने की

आवश्यकता है। इसलिए इस नौकरी को त्याग करो और अपने महान लक्ष्य के पूर्ण करने के लिए व्रती बनो। इस प्रबल प्रेरणा के बार २ उत्पन्न होने से मेरे हृदय में कई कारणों से एक घोर संग्राम पैदा होगया। क्योंकि कुछ और संबंधियों के भिन्न मुझ पर अपने और अपने पारिवारिक जनों अर्थात् अपनी पत्नी और अपने तीन बच्चों के सब प्रकार के खर्च का बोझा था। डेढ़ सौ रुपए महीने की नौकरी छोड़ देने पर मेरा और उनका क्या हाल होगा? मेरे इस कुल खर्च को कौन पूरा करेगा? फिर जिस अवस्था में इस देश में जिस प्रकार के साधु लोग साधारण जनों के श्रद्धाभाजन बने हुए हैं और वह जिस प्रकार की शिक्षा देते हैं, उनसे मेरा जीवन, मेरा लक्ष्य, मेरा उपदेश और मेरा कार्य्य निराला है, तब मुझ पर कौन श्रद्धा करेगा? फिर जब मेरे इस निरालेपन के कारण और बहुत से लोगों के भिन्न मेरी अपनी सोसाइटी के हि कितने लोग विरोधी बने हुए हैं, तब आगे जाकर वह विरोधता जहां तक बढ़ेगी, उसका कौन अनुमान कर सकता है? ऐसे कई प्रकार के विचारों और भावों के उठने से कुछ समय तक मेरे लिए उपरोक्त विषय में फ़ैसला करना कठिन होगया। परन्तु आख़िरकार मुझे यह प्रतीत हुआ, कि इस विषय में और अधिक सोच विचार करना वृथा है। मुझे पहिले की तरह अपने उच्च लक्ष्य के संबंध में जब और जो कुछ त्याग करना

आवश्यक बोध हो, उसे उसके प्रति सच्चे रहने के निमित्त किए जाना चाहिए, और इस राह में जिस २ प्रकार की और जो २ कुछ विपद और बदनामी, हानि और कठिनाई और जिस २ प्रकार का उत्पीड़न और दुःख और क्लेश और अज़ाब आवे, उसे अपने सिर पर लेने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि इस अनोखी साधनअग्नि में से गुज़रने के बिना सिद्धि असम्भव है। इसलिए आख़िरकार मैंने अपनी नौकरी से इस्तेफ़ा दे दिया, और २० दिसम्बर १८८२ ई० को एक बहुत बड़ी साधारण सभा में मैंने अपने अद्वितीय लक्ष्य और उसके संबंध में अपने जीवन व्रत ग्रहण करने का उच्च अनुष्ठान सम्पन्न किया।

मैंने अपनी सर्कारी नौकरी के पिछले दिनों में कुछ रुपया जमा किया था। जीवन व्रत ग्रहण करने के बाद उस के सूद से मुझे अपने दैनिक निर्वाह में कुछ सहाय मिलती थी। सन् १८६३ ई० के अख़ीर में मेरे बड़े २ विरोधियों में से एक सिक्ख वकील ने जो खुल्लम खुल्ला यह कहा करता था, कि "देव धर्म्म मिशन का ग़ारत करना मेरी ज़िन्दगी का मिशन है," मुझ पर और श्रीमान् अमरसिंह पर (जो सिक्ख मज़हब से निकलकर मेरे सेवक बने थे और देव धर्म्म के प्रचारक थे) फ़ीरोज़पुर में पहले दो फ़ौजदारी मुक़दमे दायर किए, फिर उसने धीरे २ इन मुक़दमों की तादाद बढ़ानी शुरू की, और

फ़ौजदारी के भिन्न कुछ मुक़द्मे दीवानी भी दायर किए। मैं इस प्रकार इस नई क़िस्म की, परन्तु अत्यन्त क्लेशदायक और धन के विचार से भी अत्यन्त हानिकारक विपद में ग्रस्त किया गया। यह समझा जाता था, कि यह अदालती शिकंजे मुझे और मेरे अनोखे व्रत को सदा के लिए नष्ट करदेने के निमित्त काफ़ी हैं। वर्षों तक इन मुक़द्मों का सिलसिला जारी रहा। मेरे विरोधी ने शुरू में हि मेरे और मेरे उपरोक्त सेवक के नाम पांच २ सौ के ज़मानती वारंट जारी कराए। मुझे यद्यपि लाहौर में रहते और परोपकार विषयक नाना काम करते प्रायः बसि वर्ष होचुके थे, तथापि मैंने इस अत्यन्त संकटमय समय में यह उचित न समझा, कि मैं अपनी ज़मानत के लिए वहां के अपने क़िसी परिचित वा उपकृत जन से आवेदन करूं। निदान मैंने बहुत सोच विचार के बाद एक बैंक के यूरोपियन मैनेजर को पत्र लिखा, कि मेरा जो रुपया उनके पास जमा है, उसके आधार पर वह कृपा करके मेरे ज़ामिन बन जायं। उन्हों ने मेरी यह युक्ति-मूलक बात मान ली, और वह मेरे ज़ामिन बन गए।

मेरे विरोधी ने फ़ीरोज़पुर में मुक़द्मे दायर करने से पहले वहां के बहुत से वकीलों को अपने साथ गांठ लिया था—यहां तक कि जो उसके पक्षपाती भी न थे, उन में से भी बहुतों ने उसके साथ यह प्रण कर लिया

था, कि वह मेरे वक़ील बनकर उसके ख़िलाफ़ कभी खड़े न होंगे। इस प्रकार मेरे वास्ते वहां पर वकील करना बहुत कठिन होगया।

लाहौर से फ़ीरोज़पुर जाने के लिए जिस २ वकील से पूछा गया, उसी ने एक २ पेशी के वास्ते इतनी फ़ीस मांगी, कि जो मैं किसी प्रकार से नहीं दे सकता था। निदान बहुत कठिनाई के बाद फ़ीरोज़पुर के हि एक मुसलमान वकील को उसकी मुंह मांगी फ़ीस देकर तैयार किया गया। यह फ़ीस दीगई। परन्तु उसका अदालत में जाकर हाज़िर होना हि था, कि मेरे विरोधी वकील ने उसे एक ऐसी धमकी दी, कि वह फ़ौरन वहां से चुप चाप खिसक गया, और फिर कभी मेरी पैरवी के लिए हाज़िर न हुआ; और न उस ने मुझ से ली हुई फ़ीस हि मुझे वापिस की।

इसके बाद वहां के एक और योग्य जन को वकील नियत किया गया। कुछ तो यूं भी उनकी फ़ीस की शरह और वकीलों से ज़्यादा थी, और कुछ एक साथी वकील के ख़िलाफ़ मुक़द्दमा लेने के कारण उन्हों ने मुझ से ज़्यादा फ़ीस मांगी, जो उन्हें दीगई। परन्तु मुक़द्दमों की संख्या दिनों दिन बढ़ती गई, और प्रायः उन सब के लिए उन्हें बहुत ज़्यादा फ़ीसें देनी पड़ीं। फिर कितनी बार यह मुक़द्दमे इतनी जुदा २ अदालतों और ऐसे दिनों में होते थे,

कि जिन में एक वकील से काम न चल सकता था, और कई अन्य जनों को पहले वकील के साथ वा उसके स्थान में नियुक्त करना पड़ता था। इस प्रकार सैंकड़ों रुपए इन मुक़द्दमों में केवल वकीलों को फ़ीस में देने पड़े।

फ़ीस की इस भारी रक़म के भिन्न लाहौर वा मंटगुमरी से मुझे और मेरे कई २ साथियों को किराया ख़र्च करके वार २ पेशियों पर जाना पड़ता था, और फ़ीरोज़पुर में कभी किसी और कभी किसी किराए के मकान में रहना पड़ता था। कितने हि गवाहों को ख़र्च दे देकर बुलाना पड़ता था। इस पर भी बहुत रुपया ख़र्च करना पड़ा। इस के भिन्न सैंकड़ों रुपए सरकारी काग़ज़ों की नक़लों के लेने वा छपवाने, मिसलों के देखने और मुख़तलिफ़ कमीशनों की फ़ीस के अदा करने में ख़र्च हुए।

इन सारी विपत्तियों के आने पर मुझे आर्थिक विचार से भी जिन २ गहरी कठिनाइयों में से गुज़रना पड़ा, उनका पूरा २ बयान नहीं हो सकता। इन कठिनाइयों का कुछ २ अनुमान निम्न लिखित बातों से हो सकता है :—

(१) मैं देवाश्रम में जिस मकान में रहता था, वह ख़ाली करके मुझे किराए पर देना पड़ा। मैं ख़ुद मंटगुमरी में पहले चार पांच रुपए महीने के किराए के कच्चे मकानों में और फिर वहीं पर अपना एक कच्चा मकान बना कर रहने लगा।

(२) मुझे अपना धर्म्म जीवन नामक साप्ताहिक उरदू अख़बार जो ग्यारह साल से जारी था, बन्द कर देना पड़ा। और मेरा जो प्रेस प्रायः सात साल से जारी था, उसका सब सामान बेच देना पड़ा।

(३) मुझे अपने घर का भी बहुत सा असबाब बेच देना पड़ा।

(४) मुझे अपने एक बहुत होनहार पुत्र श्रीमान् कान्ति नारायण जी की कालेज की पढ़ाई बन्द कर देनी पड़ी। वह अपनी पढ़ाई में इस क़दर होशियार थे, कि उन्हों ने एन्ट्रेन्स की दोनों जमायतों की पढ़ाई एक हि साल में ख़तम करके प्रथम श्रेणी में एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की थी। वह कालेज में शिक्षा पाने के बहुत आकांक्षी थे। परन्तु मैं वहां की फ़ीस आदि विविध ख़र्चों के पूरा करने के असमर्थ होने के कारण उन्हें आगे न पढ़ा सका।

—:०:—

दूसरा अध्याय।

—:o:—

पुरानी "बिरादरी" का त्याग।

कान्य कुब्ज ब्राह्मणों में से उपमन्यु गोत्र और रिवाड़ी के अग्निहोत्री वंश से मेरा जन्म विषयक सम्बन्ध है। कान्य कुब्ज ब्राह्मण कहा करते हैं, कि "कान्य कुब्जा द्विजाः श्रेष्ठाः" अर्थात् कान्य कुब्ज ब्राह्मण सब द्विजों में श्रेष्ट हैं। सम्भव है कि हमारे पूर्व्वजों ने किसी विगतकाल में और ब्राह्मणों की अपेक्षा कभी ऐसी श्रेष्टता लाभ की हो। परन्तु इस काल में क्या सत्य धर्म्म वा सदाचार, क्या विद्या, क्या धन और क्या कई सामाजिक प्रथाओं आदि के विचार से साधारण कान्य कुब्ज ब्राह्मणों की जो दशा है, वह भारतवर्ष के और कितने हि ब्राह्मणों की तरह अत्यंत शोचनीय है !! कान्य कुब्जों में यह कहावत प्रचिलत है— "आठ कनौजिए नौ चूल्हे," अर्थात् किसी जगह आठ कनौजिए ब्राह्मण मौजूद हों, तो उनके लिए नौ चूल्हे चाहिएं—जिनमें से एक २ चूल्हा उनमें से हर एक को अपनी अलग २ रसोई बनाने के लिए और एक चूल्हा आग लेने के लिए आवश्यक है। कान्य कुब्ज ब्राह्मण अपनी वर्तमान

प्रथा के अनुसार वंशगत विशेष सम्बन्ध के बिना और तो और अपने हि गोत्र के किसी मनुष्य के हाथ का पकाया वा छुआ हुआ भोजन नहीं कर सकते। यदि कोई कान्य कुब्ज ब्राह्मण किसी मुसलमान की तरह चोरी करता हो, दूसरों की किसी वस्तु को दबा लेता हो, अपने पेशे में तरह २ की बददयानती करता हो, रिशवत लेता हो, मांस खाता हो, जीवों का बध करता हो, कोई नशा पीता हो, जुवा खेलता हो, व्यभिचार करता हो; यहां तक कि मुसलमान बेश्या भी रखता हो, और किसी एक वा दूसरे अपराध में दंड पाकर क़ैद भुगतता हो, तो भी कोई हर्ज नहीं—तो भी वह यह सब दुराचार और पाप करके अपनी बिरादरी के लोगों के निकट निर्लेप, निर्विकार और पवित्र रहता है; किन्तु यदि वह सत्य और न्याय के अनुसार कभी आवश्यक होने पर किसी अन्य जाति के किसी सदाचारी पुरुष वा स्त्री के हाथ का बनाया वा स्पर्श किया हुआ अन्न खाले, तो वह झट धर्म्म से पतित और भृष्ट होजाता है और इतना बुरा बन जाता है, कि फिर वह अपने वंशीय जनों के साथ खान पान वा विवाह आदि सम्बन्ध रखने के योग्य नहीं रहता। वह कपटी बन कर चुपचाप एक मुसलमान बेश्या के हाथ से चीज़ें खा सकता है, परन्तु सरल बनकर और प्रगट रूप से अपने विशेष वंशीय संबंधियों को छोड़कर किसी अच्छे से अच्छे मनुष्य के हाथ का पकाया वा स्पर्श किया हुआ आहार

नहीं खा सकता। इसी प्रकार वह एक वा दूसरे मूर्ख और दुराचारी अथवा कंगाल कान्य कुब्ज के घर में अपने लड़के वा लड़की का विवाह कर सकता है, परन्तु किसी और जाति में तो कहीं रहा, किसी और प्रकार के सदाचारी और विद्वान ब्राह्मण के यहां भी विवाह विषयक कोई सम्बन्ध स्थापन नहीं कर सकता। इसी प्रकार कई अच्छे पेशों के ग्रहण करने के सम्बन्ध में भी इन लोगों में कई और हिन्दु बिरादरियों की तरह वृथा और मिथ्या क़ैदें लगी हुई हैं। मुझे सत्तरह वर्ष की उमर से हि ऐसी बिरादरी के लिए, कि जिसमें उपरोक्त नाना प्रकार के पापों और अपराधों के लिए तो खुली आज़ादी थी, और अन्यायमूलक छूत छात के त्याग और न्यायसंगत विवाह आदि के विषय में अति आवश्यक और हितकर कोई उचित आज़ादी न थी, कुछ श्रद्धा नहीं रही थी। जिस बिरादरी के लोग नाना प्रकार के बड़े २ नीच, अधम और दुराचारियों के साथ बैठने उठने, उनके साथ खाने पीने और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापन करने में कोई संकोच अनुभव न करते हों, वरं कई सूरतों में उलटा अभिमान करते हों, और सच्चे सदाचारी, पवित्र और धार्मिक जनों को खान पान और विवाह आदि विषयक किसी अन्यायमूलक वा बुरी प्रथा के त्याग करने पर घृणा की दृष्टि से देखते हों, और उनके साथ खान पान आदि व्यवहार में संकोच करते हों; वस्तुतः उत्कृष्टता की

अपेक्षा निकृष्टता का अधिक आदर और सन्मान करते हों, उस समाज वा बिरादरी वा जाति के लोग किसी भी सच्चे उच्च-जीवन-प्रिय मनुष्य के श्रद्धा के पात्र नहीं हो सकते। इसके भिन्न नेचर के अटल नियम के अनुसार ऐसे जनों के लिए उन्नति के पथ से पतित होकर दिनों दिन अधोगति को प्राप्त होना भी एक लाज़मी बात है, इसीलिए हिन्दु जाति अपनी ऐसी अधोगतियों के द्वारा आज जिस पतन की दशा में पहुंची हुई है, उस पर जितने शोक और दुःख का प्रकाश किया जाए उतना कम है !!

धर्म्म जीवन की उच्च शक्तियों के विकशित होने से मेरे लिए असत्य और अन्यायमूलक प्रत्येक प्रथा का साथ देना असम्भव होगया;—मैंने बोधी होकर सत्तरह वर्ष की उमर से हि अपनी बिरादरी की मिथ्या और हानिकारक रसमों में योग देना छोड़ दिया। अभी मैं २३ वर्ष का हि था, कि मेरे पिता का देहान्त होगया, परन्तु मैंने उनके पुराने तरीक़ के मृतक संस्कार की किसी क्रिया में भाग नहीं लिया—यह सारा काम मेरी माता की आज्ञानुसार मेरे छोटे भाई ने (जिसकी उमर उस समय १३ साल के लग भग थी) पूरा किया। मेरी माता का मृतक संस्कार भी मेरे इसी भाई ने किया था। ऐसी रसमों के त्याग के भिन्न खाने पीने के सम्बन्ध में अनुचित और हानिकारक छूत छात की क़ैदें भी मैंने

तोड़ दी थीं। इसीलिए जैसी कि उम्मेद करनी चाहिए, मेरी ऐसी गतियों से मेरे वंशगत सम्बन्धी मुझ से बहुत नाख़ुश थे। २५ दिसम्बर १८८० ई० को मेरी पहली पत्नी का शरीर पात हुआ। उनका मृतक संस्कार भी मैंने किसी पुरानी रीति के अनुसार नहीं किया। उनके गर्भ से मेरे तीन बच्चे थे, उन में से भी किसी के संबंध में मैंने कोई अनुष्ठान पुरानी विधि के अनुसार सम्पन्न नहीं किया। यहां तक तो मेरे वंश के लोग मुझ से नाराज़ रह कर भी मेरे उच्च चरित्र के कारण मेरी इन क्रियाओं के सम्बन्ध में दरगुज़र करते रहे। परन्तु सन् १८८१ ई० में वह समय आया, जब उनके लिए मेरे संबंध में और दरगुज़र करना असम्भव होगया। मैं विधवा विवाह का बहुत बड़ा समर्थनकारी था। मैंने इस विषय में बहुत कुछ लेख लिखे थे। मेरी पहली पत्नी के शरीर त्याग के पश्चात् बहुत काल के अनन्तर जब मैंने दूसरे विवाह का इरादा किया, तब मेरे भीतर यह संकल्प उठा, कि यदि मैं किसी विधवा स्त्री के साथ विवाह कर सकूं, तो मैं अब तक जिस बात को अपने कथन से उचित प्रगट करता रहा हूं, उसे अपने कार्य्य से भी समर्थन करके औरों के लिए दृष्टान्त बन सकता हूं। मेरी इस कामना के पूर्ण होने के लिए अवसर पैदा होगया; और मैंने नवम्बर १८८१ ई० में कलकत्ते में एक बंगाली विधवा स्त्री से विवाह किया। यह लेडी यद्यपि ब्राह्मण कुल में

से थी, और बंगाली लेखकों के लेखानुसार उसके पूर्व्वज भी वही ब्राह्मण थे, जो कान्य कुब्ज वंश के थे और जो बंगाल में जाकर आबाद हुए थे, तथापि एक ओर उसका हिन्दुस्तानी के स्थान में बंगाली होना और दूसरी ओर विधवा होना इस बात के लिए काफ़ी कारण था, कि मेरे वंश के लोग मुझे अपना न समझें। मैं अपने आत्मा की उच्च गति में पहले से हि उन्हें अपना साथी और सहायक नहीं पाता था, और मैं उनकी ख़ातिर अपने किसी उचित और शुभ कार्य्य के स्थान में किसी भी अनुचित और अशुभ बात के ग्रहण करने के लिए तैयार न था, इसलिए इस घटना के बाद जैसे उन्हों ने चुप चाप मुझ से अपना सम्बन्ध काट लिया, वैसे हि मैंने शोक पूर्व्वक उनके साथ भी अपना बिरादरी विषयक सम्बन्ध छोड़ दिया।



तीसरा अध्याय।

स्वास्थ्य का त्याग।

१८८२–१८९२ ई०।

उच्च जीवन के विकाश के साथ २ जैसा कि आवश्यक था, क्या निकट और क्या दूर के लोगों के साथ मेरी टकराहट शुरू होगई। लाहौर में १८७५ से मेरी विरोधिता अधिक गाढ़ रूप से आरम्भ हुई। सन् १८८२ ई० में मेरे जीवन व्रत की घोषणा के अनन्तर मुझ से विरोधी प्रकृति रखने वाले जनों की विरोधिता ने मेरे सम्बन्ध में विशेष रूप से भयंकर रूप धारण किया। मेरे उत्पीड़न कारियों की संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी और वह मुझे अधिक से अधिक सताने और उत्पीड़ित करने लगे। इधर मैं अपने देव अनुरागों से परिचालित होकर नाना प्रकार के कामों के द्वारा अतिशय परिश्रम करने लगा; उधर शारीरिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में नाना प्रकार के अभावों और उत्पीड़न कारियों के दिनों दिन बढ़ते हुए उत्पीड़न से मेरे शरीर ने प्रायः दो वर्ष

तक बख़ूबी मुक़ाबिला करने के बाद बिगड़ना शुरू किया। यद्यपि ३२ वर्ष की उमर में जीवन व्रत ग्रहण करने के समय मेरा शरीर प्रत्येक रोग से शून्य और बहुत मज़बूत था—मस्तिष्क विशेष कर बहुत शक्ति शाली था—तथापि एक ओर मुझ पर जिस २ प्रकार के मान्सिक परिश्रम का अतिशय बोझा पड़ा, और धन आदि के अभाव से शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा के आवश्यक सामानों से मुझे वंचित होना पड़ा, और दूसरी ओर विरोधियों और उत्पीड़न कारियों की तरफ़ से लगातार आघात् पर आघात् मिले, उस से मेरे नीरोग और बहुत बड़े मज़बूत शरीर के लिए भी और अधिक काल तक स्वास्थ्य की अवस्था में रहना असम्भव होगया।

दिसम्बर १८८५ ई० से उपदेशों, व्याख्यानों, साधन सभाओं और मिलने जुलने में बोलने का अत्यन्त काम करने से मेरे गले को बहुत हानि पहुंची। मेरा गला रोगी होगया। मेरी छाती में दर्द पैदा होगया। मेरा पेट बिगड़ गया और शरीर में यूरिक ऐसिड के अधिक पैदा होने से मेरे जोड़ों में दर्द शुरू होगया। यह सब कुछ यद्यपि मेरे लिए बहुत कष्ट दायक था, तो भी मुझ पर जिन देव शक्तियों का अधिकार था, उन से विवश होकर मैं उनकी जय के लिए न केवल अपने शारीरिक स्वास्थ्य किन्तु सुख, आराम, मान, संभ्रम, धन और सम्बन्धियों आदि सब प्रकार के पूर्ण त्याग के लिए तैयार था।

सन् १८८६ और ८७ ई० में मेरी स्वास्थ्य कुछ और भी बिगड़ी। सन् १८८८ ई० में मैं कई बार बहुत दिनों तक अधिक बीमार रहा। जून १८८८ ई० में जल वायु के परिवर्तन से अपने स्वास्थ्य में कुछ बेहतरी लाने के विचार से मैं हरिद्वार में जाकर रहा; परन्तु वहां जाने से मुझे कुछ विशेष लाभ न हुआ। १५ अप्रैल सन् १८८९ ई० को मुझ पर शूल के महा भयानक दर्द ने आक्रमण किया। यद्यपि सुबह से हि दर्द शुरू होगया था, तो भी उस हालत में मैं दोपहर तक अपना काम किए गया। परन्तु यह दर्द बढ़ते २ तीन बजे के समय इतना प्रबल होगया कि मेरे लिए उसका सहना असम्भव होगया, और मैं उस से पानी से निकली हुई मछली की तरह तड़पने लगा। मेरी बेचैनी की कोई हद न रही। कई डाक्टर बुलाए गए, और उनकी सम्मिलित व्यवस्था से एक औषधि के पीने से बहुत रात जाने पर पीड़ा घटनी आरम्भ हुई, और ग्यारह बजे के लग भग उस से आराम हुआ।

सन् १८९० ई० में मैं कई बार बहुत बीमार हुआ। कई बार मैं कितने २ काल तक कई प्रकार के कामों के करने के पूर्णतः अयोग्य रहा। इसी साल की गर्मियों में "स्नायविक दुर्बलता" (Nervous prostration) का मुझ पर पहले पहल आक्रमण हुआ, और उससे मैं कई महीने तक बहुत कष्ट पाता रहा। २ अक्तूबर सन् १८९० ई० को मैं अपनी सेहत की बेहतरी के लिए लाहौर से

कराची को रवाना हुआ और वहां कई सप्ताह तक ठहरा रहा, परन्तु इस परिवर्तन से मुझे कुछ अधिक लाभ न हुआ।

सन् १८६२ ई० का साल मेरी सेहत के लिए विशेष रूप से हानिकारक प्रमाणित हुआ। इस साल पिछले कुल सालों से चढ़ बढ़कर मुझ पर इतने हृदय विदारक और महाभयानक आघात् लगे, और मेरे लिए इतनी विपत्ति-जनक और महा दुखदाई घटनाएं उत्पन्न हुईं, कि मैं उनके एक अंश का भी ठीक २ वर्णन नहीं कर सकता। अजीर्ण रोग से मैं पहले से हि बीमार चला आता था। लाहौर में रहकर और उसमें कुछ बेहतरी न देखकर मैं जुलाई मास में जल वायु के परिवर्तन के लिए रावलपिन्डी चला गया। वहां मैं तीन सप्ताह से अधिक ठहरा रहा। परन्तु वहां भी विश्राम न करने और काम करते रहने से मुझे बहुत थोड़ा फ़ायदा हुआ। अगस्त में कुछ आश्रम वासियों की विश्वास-घातकता और दुष्टता से अत्यन्त आघात् और महा दुख मिला। सितम्बर में मैं ऐसे महा दुखों से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर कुछ दिन के लिए कई एक बाहर के स्थानों में फिरता रहा। फिर लाहौर आकर कुछ दिन बाद हि रावलपिन्डी को चला गया। वहां पर मैंने "विलाप" विषयक वह लेख लिखा, कि जो देव समाज के इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा।

मेरी सांघातिक विरोधिता और उसके कारण मेरा मृत्यु प्राय अवस्था को प्राप्त होना।

इन्हीं दिनों गिरधर राय, सुन्दर सिंह और प्रकाश देव के देव समाज से निकाले जाने और उनके मेरे विरोधियों के साथ मिलने और उनके साथ मिल कर मेरे सम्बन्ध में नाना प्रकार की महा उत्पीड़नकारी क्रियाओं के करने से मुझे कितने काल तक वह असह्य कष्ट पहुंचा, कि जिसका वर्णन असंभव है। पहली नवम्बर को इन लोगों को अपने साथ मिलाकर मेरे विरोधियों ने मुझे और मेरे जीवन व्रत को सदा के लिए नष्ट कर देने की नियत से एक विराट सभा की, कि जिसमें प्रायः दो हज़ार लोग शामिल थे। क्या इससे पहले और क्या इसके बाद मेरी विरोधिता के प्रकाश में इतनी जोशदार और इतनी बड़ी कोई सभा नहीं हुई। इस महा सभा में मेरे, मेरे पारिवारिक और कई प्रचारक जनों के सम्बन्ध में जितने और जिस २ प्रकार के झूठे कलंक लगाए गए, मेरे सम्बन्ध में जितनी गहरी घृणा का प्रकाश किया गया, मेरे मरने और मेरी पत्नि के विधवा होने के लिये जिस प्रकार की खुल्लमखुल्ला कामनाएं की गईं, उनका यहां वर्णन नहीं हो सकता। मुझ मुद्दत के बीमार और शरीर के विचार से बहुत दुर्बल

और आत्मा के विचार से पूर्ण सत्य और हित परायण पर ऐसी महा सभा का जैसा कुछ सांघातिक असर पड़ा, उसे मेरे सिवाय और कौन अनुभव कर सकता था? कोई नहीं। तीसरी तारीख़ को मैंने अपनी इस रोगी और अत्यन्त दुर्ब्बल अवस्था में भी अपने इन विरोधियों के नाना मिथ्या कलंकों और उनकी महा नीच और शोचनीय अवस्था को प्रगट करने के लिए एक लेकचर देने की नोटिस दी। मेरे विरोधी ख़ूब जानते थे, कि यदि मेरा यह लेकचर हुआ, तो मेरे सत्य के प्रकाश करने से उनकी सारी महापापमूलक क्रियाएं और उनके सारे मिथ्या कलंक ज़ाहर होजाएंगे। इसलिये उन्हों ने अपनी सभा में हि उपस्थित जनों से यह आवेदन किया, कि उनमें से कोई जन मेरे लेकचर के सुनने के लिये देव समाज प्रचार हाल में न जाय। परन्तु फिर यह सोच कर कि उन्हें इस चाल में कामयाबी न होगी, उन्हों ने यह साज़िश की, कि जब मैं अपने लेकचर के लिए खड़ा हूं, तब वह उस समय इतने विघ्न उत्पन्न करें, कि जिस से मेरा लेकचर हि न हो सके। मेरे यह सब विरोधी जन वही थे, जो अपने आपको ईश्वर नामक एक देवता का पुजारी प्रगट करते थे। इस दूसरी तरकीब में मेरे विरोधियों को अवश्य सफलता हुई। यद्यपि लेकचर के समय से पहले हि मुझे वमि पर वमि आरही थी, और मैं सख़्त तकलीफ़ में था, फिर भी समय आने पर मैं अपने आत्मिकबल

से लेकचर देने के लिये खड़ा होगया। सारा हाल आदमियों से भरा हुआ था, और दरवाज़ों पर भी लोग ठसा ठस खड़े हुए थे। अभी मैंने मुशकिल से कुछ वाक्य मुंह से निकाले थे, कि मेरे विरोधियों ने अपनी पहली साज़िश के अनुसार बहुत ज़ोर २ के साथ शोर मचाना और बेंचों वा लेम्पों को तोड़ना शुरू किया। उनके इस अत्याचार में अन्य ईश्वर पुजारियों की अपेक्षा आर्य्य समाज के लोगों ने बहुत बढ़ चढ़ कर भाग लिया। उस समय आर्य्य समाज के कई बड़े २ विख्यात नेता भी मेरे पास हि वैठे हुए थे, परन्तु उनमें से किसी ने इन जनों को इस अत्याचार से रोकने के लिए एक शब्द तक अपने मुंह से न निकाला। इस समय मैंने यह देखकर कि इस अत्याचार और अत्यन्त कोलाहल के समय एक ओर मेरा लेकचर हो नहीं सकता, और दूसरी ओर मेरे विरोधी मेरे शरीर को भी और तरह पर हानि पहुंचाने के लिए उद्यत हैं, वहां से अपने निवास स्थान को लौटना हि उचित समझा, इसलिए कई सहायक जनों के साथ मैं अपने घर को वापिस आया। इसके कुछ काल के अनन्तर मेरे विरोधी भी मेरी बहुत सी चीज़ों की हानि करके और अपने २ दिलों का कुछ अरमान निकाल के अपने २ घरों को चले गए।

जैसी कि आशा की जासकती थी, इस ताज़े अत्याचार ने मेरी बिमारी को बहुत बढ़ा दिया—मेरे दिल

ने असाधारण आघात् पाया, उसकी चाल बहुत धीमी होगई। मेरी स्नायु प्रणाली चकनाचूर होगई। पेट को और भी अत्यन्त हानि पहुंची। वह और खाद्य तो दरकिनार, दवा को भी ग्रहण न करता। मेरी दुर्बलता बराबर बढ़ने लगी, ९ नवम्बर से मेरी हालत बहुत नाज़ुक होगई, प्रायः पांच दिन तक मेरे जीवन के साथ मृत्यु का संग्राम होता रहा। यह दिन महा संकट और आशंका से कटे। मैं बीच २ में बेहोश रहने लगा। मेरे सम्बन्धी मेरे जीवन से निराश होगए। १३ नवम्बर को एक बार की बेहोशी से कुछ मिनटों के लिए होश में आने पर, मुझे अपनी समाज के परिचालन के विषय में एक बात का ख़्याल आया। मैंने अत्यन्त धीमी आवाज़ में कुछ और परिचालकों के साथ एक और जन का नाम बढ़ा देने के लिए एक काग़ज़ पर एक वा दो सतरें लिखने की इस लिए एक जन को आज्ञा दी, कि उसके नीचे मैं अपने दस्तख़त करदूं। परन्तु उसी समय मैं फिर बेहोश होने लगा और इसलिए मैंने बड़ी कठिनता से उस पर दस्तख़त किए। इसके अनन्तर मेरे शरीर पर मृत्यु का कार्य्य आरम्भ होगया। मैं फिर पूर्णतः अचेत होगया। मेरे परलोक वासी उच्च सम्बन्धी जो उस समय मेरे पास मौजूद थे, मुझ में बल संचार करने के लिए अपने बल का प्रयोग करने लगे। आख़िरकार उन्हें

सफलता हुई। मुझ में बल आने लगा, और मृत्यु का काम रुक गया। विश्व के विकाश क्रम में मेरे जीवन व्रत की सिद्धि के लिए जो २ शक्तियां काम कर रही थीं, उन्हों ने आख़िरकार इस मृत्यु पर जय लाभ की। मैंने कुछ देर के बाद होश आने पर फिर आंखें खोल दीं। तब से मेरी स्वास्थ्य में धीरे २ उन्नति होने लगी। मैं मौत के चंगुल से बाहर निकल आया। मेरी यह उन्नति बराबर जारी रही, और मैं चार पांच सप्ताह के बाद कुछ २ चलने फिरने के योग्य होगया। इस जीवन और मृत्यु के घोर संग्राम के समय मैंने एक बार की बेहोशी के बाद होश आने पर अत्यन्त धीमी आवाज़ में और बहुत कठिनता के साथ जो थोड़े से अत्यन्त मूल्यवान शब्द अपने जीवन व्रत के सम्बन्ध में अपने मुंह से निकाले थे, वह किसी और जगह मिल सकते हैं।

(१८९३ ई०)

सन् १८९३ ई० के पिछले भाग में मेरे जीवन व्रत के नष्ट करने के लिए फ़ीरोज़पुर में मुझ पर कई मुक़दमें दायर किए गए। उनके दायर होने से मेरी सेहत को जो पहले से हि बहुत ख़राब हो चुकी थी, बहुत हानि पहुंची। ११ नवम्बर की पहली पेशी के बाद जोड़ों का दर्द बहुत बढ़ गया। कुछ दिनों के बाद दाढ़ में सख्त दर्द शुरू हुआ, और उस से कितने दिनों तक बहुत क्लेश रहा।

(१८९४ ई०)

जनवरी और फ़रवरी सन् १८६४ ई० के दिन मेरे लिए विशेष रूप से विपत्ति-जनक और पीड़ादायक थे। इधर मुझ पर मुक़दमों का बहुत ज़ोर था और उन से मुझे बहुत गहरा क्लेश मिल रहा था; उधर मेरा शरीर कई रोगों से व्यथित था। पहले कुछ दिन पाचन प्रणाली के बिगड़ जाने से मुझे दस्तों और पेचिश की शिकायत होगई; जिस से कचहरी में मौजूद रहने में मुझे बहुत दिक़्क़त रही—यहां तक, कि एक पेशी में मैंने डोवर्स पौडर की कई पुड़ियां खाकर बहुत कठिनाई से वहां का समय काटा। फिर मेरी छाती का दर्द बढ़ गया, कि जो हृदय पिंड के ऊपर के पट्ठों में पहले से हुआ करता था। इसके भिन्न मुझे जोड़ों के दर्द की भी बहुत तकलीफ़ रही, और मेरा गला भी बहुत ख़राब रहा।

इसी वर्ष के मध्य में मैं अकबरपुर चला गया; परन्तु वहां पर भी मेरी स्वास्थ्य बहुत बिगड़ी रही। इसके भिन्न मुझे और कई प्रकार की तकलीफ़ें रहीं। वहां से लाहौर वापिस आकर मैं मंटगुमरी गया। वहीं पर मैंने देव शास्त्र का लिखना आरम्भ किया।

[दूसरी बार मृत्युप्राय अवस्था को प्राप्त होना]

दिसम्बर मास में बीमारी की हालत में हि मुझे एक मुक़दमें की पेशी पर लाहौर जाना पड़ा, जहां

पर मुझे कुछ जनों की अति शोचनीय क्रियाओं से इतना दारुण आघात् पहुंचा, कि मैं फिर मृत्यु के निकट पहुंच गया। मेरी स्नायु प्रणाली (Nervous system) चकनाचूर होगई, और मैंने बहुत दिनों तक मंटगुमरी के सिविल सरजन के इलाज के बाद इस महा पीड़ा से निवृति लाभ की।

(१८९५ ई०)

दिसम्बर १८९४ ई० में मुझ पर जिस भयानक रोग का आक्रमण हुआ था, वह जनवरी १८९५ ई० में भी जारी रहा। इसी मास में कुमारी प्रेम देवी जी भी क्षयी रोग की बढ़ी हुई अवस्था में मंटगुमरी पहुंचीं, और देवोत्सव से एक दिन पहले अर्थात् १३ फ़रवरी को उनका देहान्त हो गया, जिस से मुझे बहुत क्लेश पहुंचा। मैं ख़ुद भी इन दिनों अजीर्ण रोग से बहुत बीमार था।

[तीसरी बार मृत्युप्राय अवस्था को प्राप्त होना]

इसी वर्ष की गर्मियों में मुझ पर श्वास रोग अर्थात् "एम्फ़ीसीमा" का महा भयानक और सांघातिक आक्रमण हुआ। यहां पर गर्मी का मौसम मैंने जिस क्लेश से तड़प २ कर काटा, उसका मैं शब्दों के द्वारा किसी तरह प्रकाश नहीं कर सकता। मैं यहां पर दिन और रात सिर पर भीगा हुआ तौलिया लपेटे रखता, बालटी में पानी भर कर कई २ घंटे तक उस में अपने दोनों पांव डाले रखता। इस तरकीब से यद्यपि मेरा सिर

तो पागल होने से बचा रहा, परन्तु उस पर लगातार पानी रखने से फेफड़ों को बहुत हानि पहुंची, और मुझ पर दमकशी और खांसी के महा रोग ने ऐसा आक्रमण किया, कि मैं उनके कारण न तो लेट सकता था और न सो सकता था, और न बैठ कर हि समय काट सकता था। इस महा दुखदाई दशा में मैं कई बार रात में किसी आदमी के सहारे खड़ा होकर अपने मंझे के पास टहलता रहता और अत्यन्त कष्ट के साथ समय काटता। मेरे इस रोग को जब लाहौर के एक विख्यात डाक्टर ने असाध्य बताया, तब मैं वहां से हिसार गया, और दो ढाई हफ़्ते तक वहां के एक मेहरबान सिविल सरजन से इलाज कराता रहा, और जब वहां भी मुझे कुछ फ़ायदा न हुआ, और पहले से भी मेरा हाल बहुत ख़राब होगया, तब मैंने बिठंडे में पहुंच कर वहां के एक हकीम की दवा शुरू की, कि जिस से आख़िरकार मेरी स्वास्थ्य में बेहतरी आरम्भ हुई, और कई सप्ताह के बाद इस कठिन रोग से मेरी निवृति हो गई। इस हकीम की इस सहाय के लिए मैं काफ़ी धन्यवाद नहीं दे सकता।

बठिंडे से मंटगुमरी वापिस जाने पर भी कई सप्ताह तक खांसी की कुछ २ शिकायत बाक़ी रही, पाचन प्रणाली भी ख़राब रही, और गले के लगातार रोग से मेरी सुनने की शक्ति बहुत सी चली गई।

(१८९६ ई०)

सन् १८९६ ई० की गरमियों में पहले दिल की कमज़ोरी और स्नायविक दुर्व्वलता से बहुत तकलीफ़ रही। फिर सरदी के शुरू होने पर खांसी और ज़ुकाम और गले के ख़राब होने की शिकायत रही। इन दिनों खांसी की तकलीफ़ ख़ास कर कष्ट दायक थी।

(१८९७ ई०)

१८९७ ई० में गरमी के दिनों में मुझे दिल और दिमाग़ की कमज़ोरी से बहुत तकलीफ़ रही। पेट में वायु की शिकायत रही। सरदियों के दिनों में जोड़ों के दर्द के भिन्न खांसी होती रही।

(१८९८-१८९९ ई०)

सन् १८९८ और १८९९ ई० की सरदियों में भी खांसी के रोग से बहुत तकलीफ़ रही। जोड़ों का दर्द भी होता रहा।

(१९०० ई०)

फ़रवरी सन् १९०० में देव समाज उत्सव के मौक़े पर स्नायु विषयक दुर्बलता का मुझ पर फिर महा भयानक आक्रमण हुआ। मेरे सिर में चक्कर आने लगे। मेरे लिए चारपाई पर लेटे हुए करवट का बदलना तक बहुत कठिन होगया। ऐसा बोध होता कि मुझे कोई आसमान की तरफ़

उठा कर नीचे को फेंक रहा है। इस महा दुखदाई रोग के समय पहले दो देसी डाक्टरों का और पीछे से मेडीकल कालेज के प्रिन्सीपल डाक्टर ब्रौन का इलाज किया गया; बहुत दिनों की शुभ कामनाओं और दवा के बाद यह रोग दूर हुआ। परन्तु जुलाई मास में फिर इसी रोग का आक्रमण हुआ। इस समय डाक्टर ओयन साहब इलाज करते रहे। फिर नवम्बर और दिसम्बर में तीसरी वार स्नायविक दुर्बलता का आक्रमण हुआ और पाचन प्रणाली भी बिगड़ गई। जोड़ों के दर्द और क़ब्ज़ की तकलीफ़ भी बहुत बढ़ गई। इन दिनों में डाक्टर हैंडले साहब ने मेरा बहुत दिली लगाव के साथ इलाज किया।

(१९०१ ई०)

१६०१ ई० की सरदियों में मुझ पर ज़ुकाम और खांसी का फिर बहुत ज़ोरदार आक्रमण हुआ, जिस से मुझे बहुत दिनों तक तकलीफ़ रही। डाक्टर हैंडले साहिब के इलाज से फ़ायदा हुआ। यह ज़ुकाम और खांसी का दौरा उसके पीछे भी कई वार हुआ।

(१९०२ ई०)

मार्च १६०२ ई० में मैं पहले देहली और फिर कलकत्ते को इलाज के लिए गया। देहली में वहां के एक मशहूर हकीम और कलकत्ते में वहां के एक डाक्टर

और एक कविराज की दवा की; परन्तु कुछ विशेष उपकार न हुआ।

[चौथी बार मृत्युप्राय अवस्था को प्राप्त होना]

फाल्गुण शुदि पूर्णिमा संवत् १९५८ बि० को पति पत्नी व्रत का साधन था। यह साधन ढाई घंटे तक रहा। उसके सम्बन्ध में मैंने प्रायः दो घंटे तक एक उपदेश दिया। इससे पहले मैं प्रायः आठ दिन से प्रतिदिन एक२ घंटे तक ज्ञान शिक्षा का साधन कराता रहा था, और अपने विज्ञानमूलक धर्म्म की सत्य शिक्षा के साथ कल्पना मूलक नाना मतों की मिथ्या शिक्षा की तुलना करके सत्य धर्म्म की महिमा को प्रकाश करता रहा था। इस सारे परिश्रम से मेरा रोगी और निर्बल शरीर पहले से हि और रोग ग्रहण करने के लिए तैयार होचुका था। इसीलिए उपरोक्त व्रत के साधन से उठने के साथ हि मुझ में एक नए और महा भयानक रोग के लक्षण प्रगट होने शुरू होगए। शीत, ज्वर और छाती की पीड़ा के साथ २ श्वास अवरोध के लक्षण प्रकाशित हुए। खांसी और दमकशी बहुत बढ़ गई; और नींद का आना प्रायः असम्भव होगया। भूख भी बन्द होगई। लेटना तो कहीं रहा, किसी एक अवस्था में बैठना भी अत्यन्त कठिन हो गया। इस प्रकार लगातार कई रातों तक निद्रा न होने और दिन रात उत्कट पीड़ा और कष्ट के कारण शरीर अत्यन्त दुर्बल होगया। किसी औषधि से कुछ उपकार

नहीं होता था । मैंने इस महा दुखदाई रोग से प्रायः बाईस दिन जिस महा कष्ट के साथ काटे, उसका वर्णन नहीं हो सकता । एक २ मिनट में बहुधा कई २ बार खांसी उठती थी, दम फूलता था, और कुछ देर भी चारपाई पर लेटना मेरे लिए असम्भव था । एक २ बार हृदय पिण्ड की दुर्बलता से मुझे इतनी घबराहट होती थी, कि वह मेरे पास वालों से भी देखी नहीं जाती थी, और कई बार उनकी आंखों के आगे निराशा का अन्धेरा छा जाता था । इस महा दुखदाई रोग की निवृति के लिए कई चिकित्सिक बदले गए । कई प्रकार की औषधियों का सेवन हुआ, और इन सब के भिन्न बहुत सी मंगल कामनाएं की गईं । आख़िरकार वैशाखी से एक दिन पहले से रोग ने पलटा खाना आरम्भ किया, और धीरे २ इन सारी नई पीड़ाओं में कमी आने लगी । फिर कई सप्ताह के बाद मेरा यह महा भयानक रोग दूर हुआ ।

(१९०३ ई०)

इस वर्ष में भी मेरे कई पुराने और नए रोग मेरे लिए बहुत कष्ट दायक रहे । इधर मेरा शरीर रोगी था, उधर लाहौर के अत्यन्त ताप से मैं बहुत क्लेश पारहा था, इसलिए २८ मई १६०३ को मैं मरी पर्व्वत को गया, परन्तु शोक कि वहां पर अतिशय काम करने और जल वायु के प्रतिकूल होने से मैं थोड़े हि दिनों में अधिक

बीमार होगया—जोड़ों की पीड़ा बढ़ गई, ज्वर होगया, भूख बन्द होगई, मसूढ़े फूल गए और कोष्ठ बद्ध होगया—इस अवस्था में शरीर बहुत दुर्बल होगया, और मैं लाचार १५ जून को वहां से चल कर और बहुत कठिनता से सफ़र तै करके १६ जून को लाहौर वापिस आया। जुलाई और अगस्त मास में दुर्ब्बल शरीर के साथ फिर अतिशय मान्सिक परिश्रम करने से मैं फिर अधिक बीमार होगया। नवम्बर मास में महा यज्ञ के आरम्भ होने पर कई कर्म्मचारियों की कई प्रकार की अनुचित क्रियाओं से आघात् पाने, और विविध प्रकार का बहुत परिश्रम करने से मेरी स्वास्थ्य को फिर बहुत हानि पहुंची।

(१९०४ ई०)

जून १६०४ ई० में यद्यपि मुझे गर्मी के मौसम से बहुत तकलीफ़ थी, परन्तु सिर और जोड़ों के दर्द में बहुत कमी थी। इसलिए उन दिनों मैंने लाहौर में रह कर बहुत सख्त मान्सिक काम किया। इस अतिशय परिश्रम से मेरे रोगी शरीर का फिर बहुत बुरा हाल होगया। २३ जून को स्वदेश व्रत का साधन था। मेरा शरीर यद्यपि इस व्रत संबंधी कार्य्य परिचालन के लिए बिलकुल अयोग्य था, तो भी मैंने अपने हित भाव के जोश में उसकी परवाह न की। मैंने व्रत की सभा के सम्बन्ध में उपदेश आदि सम्बन्धी

सारा काम किया । उस समय का काम तो अवश्य पूरा हो गया, परन्तु इस सख्त ज़्यादती से मेरी स्नायु प्रणाली (Nervous system) फिर चकना चूर होगई । ज़ुकाम, खांसी, और सिर दर्द आदि की कई तकलीफ़ें पैदा होगईं । कितने दिनों तक उनका सिलसिला जारी रहा । इस अवस्था में भी मैं प्रति दिन कई प्रकार के आवश्यक काम करता रहा । परन्तु फिर बहुत लाचार हो जाने पर मैंने लाहौर से भागने की कोशिश की । तीसरी जुलाई को वहां से रवाना हो कर मैं चौथी तारीख़ की शाम को शिमले पहुंचा । शोक! कि वहां का निवास क्या मौसम के विचार से (जिस दिन मैं पहुंचा उसी दिन से प्रायः प्रति दिन बहुत वर्षा होती रही) क्या घर और क्या घर के चौतर्फ़ा सामानों के विचार से मेरे लिए बिलकुल प्रतिकूल प्रमाणित हुआ । आठ दिन मैंने वहां ज्यों त्यों करके काटे, परन्तु इन आठ दिनों में भी मेरी स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुंची । मैं वहां से फिर भागा । दो दिन पटियाले में रहा । १४ तारीख़ को लाहौर वापिस आया । लाहौर पहुंच कर मैंने अपने आप को एक २ बार इतना दुर्बल अनुभव किया, कि मेरे लिए किसी से मुंह खोल कर कुछ बात चीत करना तक बहुत कठिन होगया । यहां पर सिर चकराने की शिकायत फिर पैदा होगई । परन्तु मुझे कोई शिकायत हो और मेरा शरीर कैसा हि बीमार हो, मैं जिन हालात में रक्खा गया हूं, उन में रह कर मुझे वह विश्राम हासिल नहीं,

कि जो अनुकूल अवस्था रखने वाले एक २ क़ुली को भी प्राप्त है। प्रथम, तो मैं ख़ुद विश्राम कर नहीं सकता, क्यों कि मुझे अपने जीवन व्रत सम्बन्धी नाना कामों का बोझा हर वक्त दिक़ करता रहता है । मंझे पर लेटे २ भी अकसर मेरा दिमाग़ उन्हीं विषयों पर चिन्ता करता रहता है। मैं बिलकुल ख़ाली रह नहीं सकता, और इस लिए कुछ भी पीड़ा कम होने पर काम करने के लिए तैयार हो जाता हूं। इस सब का फल यह होता है, कि मैं पनपने में नहीं आता । मेरे रोग की निवृति नहीं होती, और मैं बल लाभ नहीं करता । क्या करूं ? कुछ समझ में नहीं आता। यदि मुझे कुछ ऐसे आत्मा मिले होते, कि जो मेरे काम को छोड़ कर अपना २ काम भी भली भांत कर सकते होते, तो भी मैं उन पर भरोसा करके कुछ काल के लिए निश्चिन्त हो सकता, परन्तु यह बात भी मुझे हासिल नहीं है, फिर विश्राम क्यों कर लाभ हो ? सेवक व्रत के सम्बन्ध में प्रोग्राम बना कर उसके विषय में नाना प्रकार की बातों का फ़ैसला करना था, कि जो न चाह कर भी मुझे करना पड़ा । इसलिए लाहौर वापिस आकर मेरी बीमारी बहुत अधिक बढ़ गई । मेरे लिए उठना बैठना और मुंह से कुछ बोलना तक अत्यन्त कठिन होगया।

मेरी इस बीमारी के बढ़ाने में कुछ और कारण भी हुए। इसी अवस्था में जब कई सेवक बाहर से मिलने के

लिए आए, तब मैंने बहुत लाचार होकर ३० जुलाई को प्रचार हाल में निम्न लिखित नोटिस लगाई :—

आवश्यक सूचना।

"मुझे अपनी रोगी अवस्था के कारण सब प्रकार के काम काज और मिलने जुलने से विरत रहना अत्यन्त आवश्यक होगया है, इसलिए मैं अपने पारिवारिक और कुछ शुश्रूषाकारी जनों के भिन्न साधारणतः और सब से बहुत शोक के साथ कुछ दिनों के लिए छुट्टी चाहता हूं।"

इस पर भी बस नहीं हुई। मुझे फिर भी क्लेश पर क्लेश मिलता गया। २ अगस्त से एक मेहरबान डाक्टर का इलाज शुरू किया गया। उनकी ओर से यद्यपि काम काज करने और मिलने जुलने की पूरी मुमानियत थी, तो भी कितनी हि ऐसी दुर्घटनाएं पैदा होतीं, कि जो मेरे लिए बहुत दुखदाई और मेरे रोग के बढ़ाने का कारण बनतीं।

उपरोक्त नोटिस को पढ़कर मेरे एक सेवक ने मुझे यह पत्र लिखा :—

देवाश्रम, लाहौर।

२५-४-०५

मेरे भगवन्!

आज जब प्रातःकाल के साधन के अनन्तर मैं साढ़े छै बजे

आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहा था, तब अचानक आपके पवित्र हाथों की लिखी हुई सूचना मुझे पढ़ने को मिली। उसके लेख से आपके हृदय के अत्यन्त गहरे दुख का जो इशारा मिलता है, उसने बिजली की न्याईं मेरे हृदय में हरकत पैदा कर दी, और विवश मेरा हृदय भर आया। हे नाथ! मैं क्या करूं, किधर जाऊं, क्योंकर आपके दुखों में भागी बनूं। आपने मुझे धर्म्म जगत् में जन्म दिया, मुझे पाला और पोसा, मेरे कितने हि आत्मिक रोगों को निवारण किया, मेरे लिए जीवन का वह मार्ग खोल दिया, कि जिस पर चलकर मेरा सब प्रकार से भला है। परन्तु हाय! आपका मेरे लिए यह सब कुछ करना किस काम आया!! मेरे परम हितकारी! आप तो रात दिन नाना प्रकार के दुखों और कष्टों से घिरे रहें, और अपने आप को बहुत बेकसी और लाचारी की अवस्था में देखें, और मैं और तो और आपके दिल की हालत को भी न जानूं! संसार में नीच वासनाओं को लेकर जो सम्बन्ध हैं, उनमें भी ऐसी रसाई है, कि वह एक दूसरे तक अपने दुख सुख के असरों को भली भान्त पहुंचा सकते हैं। हाय! मैं आपका सेवक कहलाकर आप से कितना नावाक़िफ़ और आपके सम्बन्ध में कितना लापरवाह!! आपके साथ यदि मेरे हृदय का कुछ भी उचित सम्बन्ध होता, तो क्या यह सम्भव हो सकता था, कि आपके दुखों और आपकी मुसीबतों और आपके रोगों का मुझे कुछ भी पता न

लगता, और मैं मौज से अपने और चक्रों में दिन व्यतीत करके रात को आराम से सोता रहता? निश्चय मेरी यह अत्यन्त शोचनीय अवस्था है । क्या कभी कोई आपके हृदय का सच्चा मह्रम न बनेगा? मेरे भगवन्! संसार का क्या दोष है, यदि और लोग आपको न पहचानें, अथवा आपको उलटा देखें, परन्तु उनकी कैसी नीच अवस्था, कि जो वर्षों तक आपके श्री चरणों में रहकर और नाना प्रकार से आप से सेवा और उपकार पाकर फिर भी आपके असल रूप को न पहचानें, और न देखें!! मैंने आपके दरबार में पहुंचकर बेशक आपके जीवन के असाधारण उच्च प्रभावों को लाभ किया है, परन्तु आपके साथ प्रीति पूर्वक सम्बन्ध में जुड़ने की जो लीला है, वह कभी स्वप्न में भी नहीं देखी। इस सृष्टि के भीतर विकाश के क्रम में आविर्भूत होकर और उसके सर्व और परम हित साधन में रात दिन संग्राम करके और नाना प्रकार की दुर्घटनाओं से घायल किए जाकर यदि आप अपने सेवकों की ओर से भी कुछ धैर्य्य न पासकें, तो फिर और किनकी ओर से पासकते हैं? क्या उनकी ओर से, कि जो और सेवा तो दरकिनार आपके महा श्रेष्ट दान को लेना तक नहीं चाहते, अथवा इससे भी बढ़कर आपको पूर्णतः उलटे रूप में प्रगट करने में हि तृप्ति ढूंढते हैं? यह महा अनर्थ कब तक रहेगा? आप अपने अद्वितीय धर्म्म रूप के विचार से

कब तक हमारी नज़रों से छिपे रहेंगे ? कब तक आप अकेले तड़पते रहेंगे, और हम लोग पत्थर के समान आपके सम्बन्ध में प्रमाणित होंगे ? मैं अपने लिए ऐसी अवस्था को बहुत शरमनाक और दुखदाई महसूस कर रहा हूं ।

आपके दुख में दुखी और सुख में सुखी
होने का अभिलाषी

....

(१९०५ ई०)

पुराने कई रोगों के भिन्न इस वर्ष में जिन २ नए रोगों ने मुझ पर आक्रमण किया, वह यह थे :—

फ़रवरी १९०५ में ज़ुकाम शुरू हुआ, और बढ़ते २ गले के नज़ले और खांसी में बदल गया । प्रायः डेढ़ मास के अनन्तर यह रोग दूर हुआ ।

एप्रिल १९०५ में मैं रावलपिंडी गया, और प्रायः डेढ़ हफ़्ते तक वहां ठहरा रहा । वहां पर मैंने अपने शरीर के रोगी और दुर्बल होने पर भी दिन के विविध समयों में नाना आत्माओं के साथ हितकर बात चीत के भिन्न प्रायः प्रति दिन एक घंटे से लेकर डेढ़ घंटे तक सत्संगी जनों की सभाएं करके उन्हें धर्म्म और अधर्म्म, सामाजिक विविध प्रकार की सेवा, और सत्य धर्म्म दाता

आदि के सम्बन्ध में शिक्षा दी । इस सारे परिश्रम से मेरे स्वास्थ्य को फिर बहुत हानि पहुंची। पुरानी व्याधियों के भिन्न नज़ले और खांसी ने फिर आक्रमण किया। गले और छाती की तकलीफ़ फिर बहुत बढ़ गई । पेट की तकलीफ़ भी अधिक होगई।

जून मास में जब मैं कशमीर गया हुआ था, तब वहां पर भी मुझे कई दिन तक सिर की पीड़ा, पेट के दर्द और जी मितलाने की शिकायत रही।

जुलाई मास से डाढ़ों में दर्द शुरू हुआ। नीचे की एक डाढ़ में विशेष कर बहुत दर्द था। बहुत दिनों तक यह क्लेश जारी रहा। आराम होने पर कुछ दिनों के बाद यह दर्द फिर पैदा होगया, और फिर कुछ काल तक होता रहा।

अकतूबर मास के शुरू में फिर ज़ुकाम हुआ और बिगड़ कर पहले की तरह गले के नज़ले और खांसी में बदल गया। इस खांसी के कष्ट से मेरे लिए एक २ बार रात को सोना कठिन हो जाता रहा।

[एक सांघातिक रोग का आक्रमण]

१२ नवम्बर की रात को शीत और ज्वर के साथ पेचिश का बहुत सांघातिक आक्रमण हुआ। अगले दिन से केवल ख़ून और आंव और मांस के दस्त आने लगे और पाख़ाने का आना बिलकुल बन्द होगया। इस अति

कष्ट दायक रोग से मेरी हालत निहायत नाज़ुक होगई और मैं अत्यन्त दुर्बल होगया। दो डाक्टर इलाज करते रहे, और यद्यपि मेरे मरोड़ कुछ दिनों के पीछे बन्द होगए; तथापि मेरी पाचन प्रणाली उसके बाद भी बहुत दिनों तक ख़राब रही।

(१९०६ ई०)

जनवरी मास में भी पिछली खांसी दूर नहीं हुई। इसके भिन्न पेट में वायु से अफारे और जोड़ों के दर्द से बहुत तकलीफ़ रही। कितने काल तक एक देसी डाक्टर के भिन्न एक यूरोपियन डाक्टर का भी इलाज किया गया, परन्तु कुछ फ़ायदा न हुआ। फिर एक यूनानी हकीम की दवा की गई, किन्तु उस से भी आराम न हुआ।

फ़रवरी मास में सोच विचार और लिखने का बहुत काम करने से सिर फिर बहुत ख़राब हो गया। जोड़ों का दर्द भी बढ़ गया। पेट भी अधिक ख़राब हो गया और कई बार उसके दर्द से रात में अच्छी तरह सो नहीं सका।

मार्च और अप्रैल में अजीर्ण रोग से कष्ट मिलता रहा। मई और जून में कान के दर्द, ज़ुकाम, छाती में दर्द और खांसी की तकलीफ़ रही। इन रोगों के भिन्न मैं इन दिनों की सख्त़ गर्मी से भी बहुत बेचैन रहा।

जून के आख़ीर में मैं सोलन पर्व्वत पर चला गया। वहां कुछ आराम रहा। १८ जुलाई १९०६ ई० को मैं

वहां से लाहौर को लौट आया। २० तारीख़ से लाहौर में विकाशालय का अधिवेशन था। यद्यपि गर्मी बहुत थी, तथापि मैं और बहुत से कामों के भिन्न विकाशालय के सम्बन्ध में शिक्षा आदि का काम करता रहा, जिस से मेरे दिमाग़ पर उसकी शक्ति से बहुत बढ़कर बोझा पड़ा। फिर विकाशालय के पहले वार्षिकोत्सव की तैयारी आरम्भ हुई। यह काम और बढ़ गया। ४ अगस्त को स्वास्तित्व व्रत की सभा थी। मैंने उस में ढाई घंटे तक उपदेश दिया। मस्तिष्क बिलकुल चूर होगया। परन्तु मैं हित अनुराग का पागल फिर भी विश्राम न ले सका। मेरा कोई और हमदर्द भी ऐसा न था, जो मुझ से और काम न लेता, अथवा मुझे आराम करने के लिए मजबूर करता। इसलिए अगले दिन फिर प्रायः २५ जनों से मिलना पड़ा, कि जो इस अवसर पर बाहर से आए थे। उसी दिन एक लम्बी पारिवारिक सभा हुई, जिसमें काम करने से रही सही शक्ति भी चली गई। सिर दर्द जारी होगया, और कमज़ोरी बहुत बढ़ गई। फिर भी आराम नहीं। अगले दिन सुबह को और उसके बाद फिर दूसरी पारिवारिक सभा के सम्बन्ध में बहुत सा मान्सिक परिश्रम करने से मेरी स्नायु प्रणाली (Nervous system) का बिलकुल दिवाला निकल गया, और मेरे सिर और हाथ पांव आदि ने पूर्णतः जवाब दे दिया। रात बहुत तकलीफ़ और बेचैनी से कटी। तब से निहायत बुरा हाल होगया। इस हालत में भी दो दिन सुबह

(७ और ८ को) कुछ विशेष आत्माओं से मिलना पड़ा।

"८ अगस्त—शाम को डाक्टर......ने कृपा करके देखा, और दवा की व्यवस्था की। उन्हों ने कहा, कि आराम होने में दो महीने लगेंगे, और वह भी तब, जब आप किसी प्रकार का कोई काम न करें। आपका लिखना, पढ़ना, बोलना, मिलना जुलना, आदि सब कुछ बंद हो, और आप लगातार विश्राम करें।"

"६ अगस्त—दिन में कई घंटे सोया रहा। सिर में दर्द, पेट में दर्द और सख्त कमज़ोरी। दोपहर के बाद से यह अनुभव होता रहा, कि इस दुनिया में अपना हमदर्द कोई नहीं।"

"१० अगस्त—सात बजे सुबह दो सम्बन्धी मिले। मैंने उन्हें कहा, कि बहुत शोक है कि तुम में से किसी का यह लक्ष्य नहीं, कि मेरा रोग दूर हो, और उस के लिए तुम्हारे भीतर कोई चिन्ता उत्पन्न होती हो। हृदय की प्रेरणा के बिना कोई चिन्ता नहीं होती। शोक! कि तुम्हारे हृदय में जिन सहानुभूति आदि उच्च भावों की आवश्यकता है, वह प्रायः तुम में वर्तमान नहीं।"

"मेरी दवा, मेरे खाने, मेरे पास लगातार रहने, और मेरे दिल बहलाने में किसी का कोई दिली लगाव नहीं। मैं कई बातों के विचार से अपने आपको बहुत असहाय अनुभव करता हूं।"

"११ अगस्त—रोग में कुछ फ़र्क़ नहीं। आज विकाश के जन्म दिन के उपलक्ष्य में पारिवारिक सभा थी। मेरे भिन्न उसमें और सब शामिल थे। चार बजे के क़रीब सभा ख़तम हुई। विकाश ने ऊपर आकर मेरा अर्चन किया। मैंने चार पांच मिनट तक उसे उपदेश देकर अपना आशीर्वाद दिया।"

"१२ अगस्त—हाल बदस्तूर है, आज परलोक वासी सम्बन्धियों के लिए मैंने यह सूचना लिख कर लगाई :—

"मैं स्नायविक दुर्व्वलता (नर्वस प्रास्ट्रेशन) से बराबर रोग ग्रस्त हूं। सिर काम नहीं देता। शरीर के द्वारा चल फिर नहीं सक्ता। बहुत कोशिश से थोड़ा सा बोलता हूं। डा०.........का इलाज करता हूं। अभी तक कुछ फ़ायदा नहीं। तुम सब की मंगल कामनाओं की ज़रूरत है।"

"१३-१४-१५ अगस्त—प्रायः वही हाल है।"

"१६ अगस्त—खिड़की में से मैंने यह देखकर कि दफ़तर में मेरी "पुष्प और पुष्प अनुराग" नामक पुस्तक के प्रूफ़ देखे जा रहे हैं, और दो तीन दिन तक मुझे उसके लिए एक सूचना लिख देने की ज़रूरत होगी, मैं सबर न कर सका। मैं उसे तत्काल लिखने बैठ गया। मेरा दिमाग़ ख़ाली था, इसलिए लिखना बहुत कठिन होगया। यह थोड़ी सी सतरों का लेख था, परन्तु बहुत ज़ोर लगाने से कहीं आध घंटे

में मुशकिल से खतम हुआ, तब से शाम तक तबियत ज़्यादा ख़राब रही।

"१७ अगस्त—हाल बदस्तूर। ख़ुराक और दवा वक्त पर। आज गर्मी ज़्यादा रही। रात को एक बजे के बाद कितनी देर तक नींद नहीं आई। कल्पित ईश्वर की तरदींद में तरह २ के ख़यालात उठते रहे।"

"१८ अगस्त—सुबह बाहर गया। कुछ देर बाग़ में फिरा और कुछ देर बैठा रहा। "जीवन पथ" का मज़मून ठीक करके प्रेस को दिया। क्या किया जाय, लाचारी थी।"

१६ अगस्त से लेकर ३१ अगस्त तक सिर में कोई ख़ास बेहतरी नहीं आई, परन्तु उलटा आठ दस दिन तक ज़ुकाम और खांसी की नई तकलीफ़ पैदा होगई। डाक्टर ने फिर भी देखा और व्यवस्था की। काम काज भी बिलकुल बन्द नहीं होसका। हेडक्वार्टर में रहकर काम काज का बन्द होना कठिन। इसके भिन्न समीपी जनों के एक वा दूसरे आपत्ति-जनक बर्ताव से भी दिल चोटें खाकर दुखी होता रहा। क्या करूं? कहां जाऊं?

३ और ४ सितम्बर को मैंने अपने परलोक वासी सम्बन्धियों के सम्बन्ध में श्राद्ध आदि के साधन किए। डाक्टर ने बाहर जाने के लिए बहुत ज़ोर दिया और कहा, कि यहां हेडक्वार्टर में रहकर आपका आराम होना

मुशकिल है। आप कहीं बाहर चले जाएं, और वहां कुछ काम न करें। इधर उधर फिरें और किसी और तरह दिल बहलाएं। ५वीं को मुझे फिर और तकलीफ़ पहुंची। पहले मेरा इरादा था, कि १० सितम्बर को रावलपिंडी जाऊंगा, क्योंकि उस दिन से दसहरे की छुट्टियों के उपलक्ष्य में रेल का किराया कम होजायगा। परन्तु इस नई तकलीफ़ से दिक़ होकर मैंने अगले दिन ही लाहौर से भागने का इरादा किया। मैं ६ सितम्बर की रात को ८ बजे पिंडी पहुंच गया। वहां पहुंचकर सफ़र के थकान, बेवक्त खाना खाने और सोने से पेट बहुत ख़राब होगया। शौच के समय पेट में दर्द होता रहा। अगले दिन तकलीफ़ बहुत बढ़ गई। शौच के समय दर्द भी बहुत बढ़ गया, अंतड़ियों में सुद्दे पड़ गए। पाख़ाने के साथ कुछ आंव भी आई। मैं घबरा गया। पिछले साल मुझे मरोड़ों की जो सांघातिक बीमारी हुई थी, वह मुझे याद आगई। वहां पर कोई वाक़िफ़ और तजरुबेकार आदमी मेरे साथ न था। मैंने इरादा किया, कि फ़ौरन लाहौर वापिस चला जाऊं। परन्तु फिर कुछ विचार के बाद ठहर गया। विश्राम की हालत में चुप चाप पड़ा रहा। पेट के दर्द के दूर करने की दवा जो मेरे साथ थी, वह कई बार पी। कुछ चम्मच सागू के भिन्न और सब आहार बन्द रक्खा। अगले दिन दर्द कम हुआ। परन्तु पेट साफ़ न था। ६ सितम्बर को डाक्टर काली नाथ राय को (जो मेरे बहुत पुराने वाक़िफ़

थे) बुलाया। उन्हों ने आकर बहुत मेहरबानी से देखा। उन्हों ने सिटलेस पौडर जुलाब के लिए तजवीज़ किया, और अजीर्ण के लिए एक अलग दवा दी। १० को मैंने साढ़े तीन बजे जुलाब की दवा पीली। पेट साफ़ हो गया। दोपहर को थोड़ी सी ख़ूब गली हुई खिचड़ी खाई। अजीर्ण वाली दवा भी पी। उसके बाद भी दो तीन दिन तक दवा जारी रही, जिससे पेट की तकलीफ़ तो चली गई, परन्तु सिर की तकलीफ़ में कुछ फ़ायदा नहीं हुआ।

"जीवन पथ" के पिछले अंक में देव समाज की ख़बरों के लेखक ने कोट लखपत से लेकर कोपटे तक की ख़बरें लिख दीं, परन्तु मेरी बीमारी के सम्बन्ध में एक सतर तक न लिखी। मुझ से और मेरे हालात से मेरे सम्बन्धी कितने उदासीन !! कदाचित मेरा कोई रफ़ीक़ होता, और मुझे अपनी बीमारी के समय अपने रोग का उपरोक्त हाल आप लिखना न पड़ता !! और ऐसा करने से मेरे सिर की जिस क़द्र पीड़ा और दुर्व्वलता बढ़ गई, वह न बढ़ती।

१८ सितम्बर के बाद सेहत में थोड़ी सी बेहतरी आई। २३ को सैर से वापिस आने पर मुझे ज़ुकाम हो गया, और वह कई दिनों तक बराबर बढ़ता गया। सिर और सारे शरीर में दर्द और उसके साथ कुछ २ बुख़ार

होने लगा। खांसी भी फिर शुरू होगई। इसलिए वहां से मैंने फिर लाहौर को वापिस होने का इरादा किया। ३० तारीख़ की प्रातःकाल को मैं रावलपिंडी से मेल ट्रेन में रवाना होकर दोपहर को लाहौर पहुंच गया। वहां पहुंच कर भी मेरी खांसी और सिर की कमज़ोरी का सिलसिला जारी रहा।

ऐसी हालत में भी मुझे विश्राम प्राप्त नहीं। कुछ लेखों के लिखने और अन्य सामाजिक कामों के भिन्न २६ सितम्बर को मैंने २५ से ऊपर जनों की सभा में एक घण्टे से अधिक देर तक उपदेश दिया, और उस में "मैं" के भीतर से निकल कर परहित विषयक भावों के उत्पन्न और विकशित करने की नितान्त आवश्यकता ज़ाहर की। इसके बाद से मेरी शारीरिक पीड़ा और भी बढ़ गई।

अकतूबर मास में भी खांसी से तकलीफ़ जारी रही। दो दिन सारे शरीर और शिर में बहुत दर्द रहा। इसके भिन्न कुछ ज्वर भी रहा। पेट में वायु अधिक होती रही, जिस से पेट तन जाता रहा।

नवम्बर में भी खांसी से आराम नहीं हुआ। कई दिनों तक ख़ासकर रात में बहुत तकलीफ़ होती रही। इस के भिन्न शरीर में कमज़ोरी बहुत रही। दो दिन सिर और बाएं पांव और हाथ में बहुत दर्द रहा। लाहौर में

रह कर बात चीत अधिक करनी पड़ी, जिस से गले और सिर दोनों को बहुत हानि पहुंची।

दिसम्बर में महा सभा में अत्यन्त परिश्रम करने से सिर बहुत ख़राब हो गया। खांसी बढ़ गई। बलग़म बहुत निकलने लगा। गला भी ज़्यादा ख़राब होगया। सारे जिस्म में—ख़ास कर कमर से नीचे के हिस्से में—दर्द रहने लगा। कमज़ोरी बहुत अधिक हो गई। ७ और ८ दिसम्बर को खांसी से बहुत ज़्यादा तकलीफ़ रही। जोड़ों का दर्द भी बढ़ गया। डाक्टर हीरा लाल और मेजर डाक्टर गारमेन ने देखा। वह लोग फेफड़ों में कोई ख़राबी नहीं बताते। महोत्सव पर मेरी तीन घण्टे की "स्पीच" को हि वह मेरी इन कुल तकलीफ़ों की ज़्यादती का सबब बताते हैं। इधर लिखने पढ़ने आदि का काम हो नहीं सकता, और उसका करना भी उन्हों ने मना किया हुआ है, उधर निकम्मे रह कर दिन काटना मेरे लिए प्रायः असम्भव हो रहा है। क्या करूं, बहुत लाचारी की हालत में हूं !!!

(१९०७)

जनवरी, फ़रवरी :—

खांसी चली चलती है। दवाई भी होती है। क्या डाक्टरी और क्या हकीमी किसी इलाज से कुछ फ़ायदा नहीं। इस हालत में भी लिखने, पढ़ने, मिलने जुलने

और बात चीत का काम होता रहता है। १६ जनवरी को डाक्टर ने छाती की परीक्षा करके यह राय दी, कि गले की ख़राबी के भिन्न मेरे शरीर में एम्फ़ाईसीमा (श्वास रोग) के लक्षण फिर उत्पन्न होते जाते हैं। और यदि मेरे लिए किसी अपेक्षा कृत गरम और शुद्ध वायुप्रद स्थान में जाकर रहने का प्रबन्ध हो सके, तो अच्छा है; नहीं तो अधिक हानि पहुंचने का डर है। इस से पहले १८६६ ई० में भी मुझे इसी रोग का महा भयानक आक्रमण हो चुका था, और उस से मैंने अत्यंत कष्ट पाया था। डाक्टर की राय के अनुसार २० जनवरी १६०७ को मैं पूजनीया जी, कुमारी विकाश देवी और दो सेवकों के साथ करांची को रवाना हुआ। सक्खर से श्रीमान् मोहनदेव जी भी हमारे साथ हो गए। करांची में डाक्टर की राय के अनुसार मैं क्लिफ्टन (हवा बन्दर) नामी स्थान में ठहरा। इस स्थान में मैं १६ दिन तक रहा। यहां पर मैंने एक विख्यात डाक्टर से अपनी फिर परीक्षा कराई। उन्हों ने भी यही राय दी, कि मुझे एक लम्बे काल तक दिमाग़ी काम से पूर्णतः परहेज़ और पूर्णतः विश्राम करना चाहिए। क्लिफ्टन सदर की आबादी से प्रायः ढाई मील के फ़ासले पर था। वहां पर हर समय समुद्र की तेज़ हवा चलती थी। मैं जिस बंगले में ठहरा हुआ था, वह समुद्र के किनारे के बहुत समीप था। परन्तु शोक कि वहां पर भी मुझे कोई सन्तोष

जनक फ़ायदा न हुआ, उलटा क़ब्ज़ की शिकायत बढ़ गई। इसके भिन्न वहां पर ३० जनवरी से अत्यन्त ठंढी हवा और वर्षा का इस क़दर ज़ोर हो गया, कि वह स्थान लाहौर की अपेक्षा भी अधिक ठंढा हो गया। इस लिए मुझे वह जगह भी छोड़नी पड़ी।

१० फ़रवरी को करांची से चल कर मैं अपने साथियों समेत अगले दिन सक्खर पहुंचा। यह स्थान सिन्धु नदी के किनारे पर है। यहां आकर मेरी अवस्था में कुछ बेहतरी आई। मेरी खांसी पहले से बहुत घट गई। ६ मार्च तक कुछ न कुछ यह बेहतरी जारी रही। परन्तु फिर अधिक मान्सिक परिश्रम करने से मेरी स्वास्थ्य फिर बहुत बिगड़ गई। सिर की तकलीफ़ और दुर्बलता बढ़ गई। पेट में भी दर्द रहने लगा। जिस दिन लिखने, पढ़ने वा बोलने आदि का कुछ भी काम अधिक होता, उसी दिन सिर की पीड़ा और शरीर की दुर्बलता बहुत बढ़ जाती। दोपहर के बाद से आवाज़ बहुत धीमी हो जाती। बीच २ में जोड़ों का दर्द भी अधिक हो जाता।

सक्खर में भी दो चिकित्सकों ने मेरी छाती आदि की परीक्षा की। जहां तक "एम्फ़ाईसीमा" का ताल्लुक़ है, ऐसा प्रतीत होता है, कि उसकी अलामतें अब नहीं हैं। परन्तु मेरे जिस मूल्यवान कण्ठ (गले) ने वर्षों तक मनुष्य मात्र की उच्च सेवा की है, वह अंग प्रायः तीस

बत्तीस वर्ष तक सेवा करते २ इतना रोगी हो गया है, कि उसे प्रकृत वा नार्मल (normal) अवस्था में लाने के लिए अब तक जितनी दवाइयां की गई हैं, उन से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ ।• सम्भवतः महीनों तक उपदेश आदि के काम से पूर्णतः परहेज़ करने से हि इस अंग में कुछ सन्तोष-जनक बेहतरी आसकती है । यहां के डाक्टर ने भी यही राय दी, कि मुझे लगातार बहुत काल तक विश्राम की ज़रूरत है । एक तजरुबेकार हकीम ने भी यही राय दी, कि मेरे सारे हि शारीरिक अंग, अर्थात् दिल, दिमाग़, जिगर और पेट आदि आराम और पुष्टि चाहते हैं । और इस उद्देश्य के निमित्त कितने हि काल तक मुझे पुष्टि दायक औषधियों के सेवन और विश्राम की आवश्यकता है । परन्तु मैं इस रोगी अवस्था में भी आराम नहीं ले सकता । मुझे अपने जीवन व्रत सम्बन्धी नाना कामों के सम्बन्ध में कई प्रकार का काम प्रति दिन अवश्य करना पड़ता है।

मार्च :—

सक्खर में स्वास्थ्य के फिर बिगड़ जाने पर मैंने वहां से लाहौर को वापिस होने का फ़ैसला किया, और १५ मार्च को ११ बजे रात के क़रीब मैं लाहौर में पहुंच गया ।

लाहौर में पहुंच कर मुझे प्रायः प्रति दिन परिवार और

समाज सम्बन्धी विविध प्रकार के शुभ कार्य्य करने पड़े। मार्च मास में वहां पर देव समाज धर्म्म विकाशालय का अधिवेशन होने के कारण बहुत से स्थानों से सेवक और श्रद्धालु आए हुए थे। इसके भिन्न एक अर्से के पीछे मेरे सिन्ध से वापिस आने पर कितने हि सेवक सेवका मुझ से मिलने के लिए भी विविध स्थानों से वहां पहुंचे हुए थे। इसलिए फिर काम में लग जाने और लोगों से मिलने जुलने से मेरी स्वास्थ्य पहले से और अधिक ख़राब हो गई। सक्खर में जो खांसी प्रायः बिलकुल चली गई थी, उसका लाहौर में फिर सिलसिला शुरू हो गया। बीच २ में जोड़ों का दर्द बहुत बढ़ गया, जिस से दुर्बलता और भी अधिक हो गई। सिर में दर्द और उसके तपने की शिकायत भी होती रही। पेट भी ठीक हालत में नहीं रहा। एक २ वार ऐसा प्रतीत होता रहा, कि पिछले सफ़र में जो थोड़ी सी ताक़त प्राप्त हुई थी, वह वहां पहुंच कर न सिर्फ़ सब की सब नष्ट हो गई, किन्तु शरीर पहले की अपेक्षा भी अधिक दुर्बल हो गया है।

एक मेहरबान यूरोपियन डाक्टर की राय है, कि मुझे एक अरसे तक सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धियों और समाज के कार्य्य क्षेत्रों से बहुत दूर रहना चाहिए, कि जिस से मुझे एक लम्बे काल तक विश्राम